

# शिक्षा दार्शनिक के रूप में विवेकानन्द का मूल्यांकन

ए क दार्शनिक अध्ययन

## (लघु-शोध प्रबन्ध)

[ मेरठ विश्व विद्यालय; मेरठ की एम. एड. की उपाधि हेतु ]

[प्रस्तुत लघु शोध-प्रबन्ध]

१९८५-८६

मार्ग दर्शक :

**प्रो. भीष्म दत्त शर्मा**

एम. ए. (संस्कृत, हिन्दी, दर्शन-शास्त्र),

एम. एड., पी-एच डी.

प्रबन्धता, (शिक्षा विभाग) नानक चन्द

एंग्लो संस्कृत कालिज, मेरठ ।

शोधकर्ता :

**अरविन्द कुमार वर्मा**

बी. एस-सी, एम. ए. (अर्थशास्त्र),

एम. एड. (छात्र)

नानक चन्द एंग्लो संस्कृत कालिज,

मेरठ ।

अनुक्रमांक : एक 562014



शिद्धा विभाग,  
नानक चन्द ऐंगलो-संस्कृत कालिज,  
मेरठ ।

सेवा में,

श्रीयुक्त कुल सचिव,  
मेरठ विश्वविद्यालय,  
मेरठ ।

विषय - मार्ग दर्शक का प्रमाण - पत्र  
-----

महोदय,

मुझे इसको प्रमाणित करने में प्रसन्नता है कि श्री अरविन्द कुमार वर्मा ने अपना लघु-शोध प्रबन्ध ' ' शिद्धा दार्शनिक के रूप में विवेकानन्द का मूल्यांकन ' ' मेरे पथ प्रदर्शन एवं निर्देशन में सम्पन्न किया है, जिसे वह विश्व विद्यालय की १६८५-८६ ई० की एम० एड० की उपाधि हेतु प्रस्तुत कर रहा है । यह कार्य उनका नितान्त मौलिक एवं विवेकानन्द जी के एवं कतिपय अन्य इसी क्षेत्र के विद्वानों के ग्रन्थों पर आधारित है ।

आधुनिक शैक्षिक परिस्थितियों में विवेकानन्द की शिद्धा संबंधी विचारधारा की व्याख्या शोधकर्ता की अपनी सूफ बुक तथा जीवन के अनुभवों पर अवलम्बित है । समस्त कार्य अपने आप में मौलिक है ।

भवदीय,

मी०म०दत्त शर्मा

( डा० मी०म० दत्त शर्मा )

एम० ए० ( संस्कृत, हिन्दी, दर्शन शास्त्र ),

एम०एड०, पी०एच०-डी०,

प्रवक्ता शिद्धा विभाग,

नानक चन्द ऐंगलो संस्कृत कालिज, मेरठ ।





## नम्र निवेदन

प्रस्तुत 'लघु - शोध - प्रबन्ध' में शब्दों एवं विरामों की अशुद्धियाँ टंकण के कारण हो सकती हैं, अतः पाठक महोदय को सानुरोध प्रार्थना है कि उन पर अधिक ध्यान न देते हुये जामा करने का कष्ट करें ।

धन्यवाद,

अरविन्द कुमार खत्री



## शोधकर्ता का घोषणा-पत्र

मैं शपथ पूर्वक विश्वास दिलाता हूँ कि वर्तमान कार्य  
एम० एड० लघु - शोध - प्रबन्ध मैंने स्वयं ही किया है तथा इससे  
पूर्व यह अन्य किसी के द्वारा प्रस्तुत नहीं किया गया है ।

अरविन्द कुमार वर्मा

अरविन्द कुमार वर्मा,

छात्र एम० एड०,

नानक चन्द ऐंग्लो सस्कृत कालिज,

मेरठ ।



वर्तमान युग में प्रत्येक क्षेत्र में प्रगति परिलक्षित होती है, किन्तु कुछ ऐसे भी क्षेत्र हैं, जिनमें प्रगति की गति अत्यन्त मन्द है। उदाहरणार्थ शिदा के क्षेत्र में दार्शनिक मान्यताओं, जीवन-मूल्यों तथा शैक्षिक आदर्शों के क्षेत्र में अनुसंधान कम ही हो रहे हैं। स्वामी विवेकानन्द ने अपने शैक्षिक विचारों से समस्त विश्व को अत्यधिक प्रभावित किया है। पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति में पले होने पर भी इनके शिदा दर्शन में भारतीय संस्कृति, भारतीय दर्शन एवं वैदिक विचारों का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है, जो विश्व इतिहास में अतुलनीय है। परन्तु इनके शिदा शास्त्री रूप को प्रकाश में लाने के लिये अनुसन्धान कार्य अभी तक नहीं किया गया है। अतः मैंने स्वामी विवेकानन्द के शैक्षिक विचारों का अध्ययन उचित ही नहीं आवश्यक भी समझा है।

प्रस्तुत शोध सात अध्यायों में विभक्त है, प्रथम अध्याय में अध्ययन का महत्त्व एवं आवश्यकता, शोध प्रबन्ध के उद्देश्य, अध्ययन की शोध विधि। द्वितीय अध्याय में स्वामी विवेकानन्द का संक्षिप्त जीवन परिचय व उनकी दार्शनिक विचार धारा। तृतीय अध्याय में शिदा की प्रकृति व शिदा का स्वरूप है। चतुर्थ अध्याय में शिदा के उद्देश्य। पंचम अध्याय में शिदा का पाठ्यक्रम। षष्ठ अध्याय में गुरु-शिष्य सम्बन्धों की विवेचना तथा अनुशासन। सातवें अध्याय में अध्ययन का उपसंहार, अध्ययन के निष्कर्ष तथा मागी शोध कार्य हेतु सुझाव दिये गये हैं।

इस अवसर पर डा० भीष्म दत्त शर्मा जी का हृदय से आभार प्रकट करता हूँ। पूज्यवर डा० साहब ने जिस स्नेह के साथ मेरा मार्ग-निर्देशन किया है, यह उसी का परिणाम है कि मैं इस दुस्तर लघु-शोध कार्य को करने में समर्थ हो सका हूँ।

इस शोध कार्य को पूरा करने में मैंने जिन विद्वानों, लेखकों तथा



शिदा विचारकों के ग्रन्थों से सहायता की है, उन सब का भी मैं आभार प्रकट करता हूँ, विभिन्न पुस्तकालयों के अध्यक्षों का मैं अत्यन्त आभारी हूँ, जिन्होंने पर्याप्त सूचनाओं का संकलन में मुझे योगदान दिया ।

इस अवसर पर मैं `` शिदा - विभाग `` के अन्य प्राध्यापकों तथा सहयोगियों का आभार प्रकट करता हूँ क्योंकि इन सबके सहयोग से ही यह कार्य सम्पन्न हो पाया है ।

अन्त में मैं परमपिता परमेश्वर का बार-बार स्मरण करता हूँ जिनकी असीम अनुकम्पा सदैव ही मेरे ऊपर रही है ।

अरविन्द कुमार वर्मा

एम० ए० ( अर्थशास्त्र ), बी०ए०६०,

एम०ए०६० छात्र,

शिदा विभाग,

नानक चन्द एंगलो संस्कृत कालिज,

मेरठ ।





## विषय - सूची

<u>विषय वस्तु</u>	पेज न०
<u>पथम अध्याय</u>	प्रस्तावना १ - १२
(१) अध्ययन का महत्त्व	
(२) अध्ययन की आवश्यकता	
(३) अध्ययन के उद्देश्य	
(४) प्रस्तावित शोध प्रबन्ध के उद्देश्य	
<u>द्वितीय अध्याय</u>	जीवन परिचय १३ - २०
(१) जन्म	
(२) जाति	
(३) पारिवारिक परिस्थितियाँ	
(४) भौगोलिक, राजनैतिक परिस्थितियाँ	
(५) सामाजिक, आर्थिक परिस्थितियाँ	
(६) हिन्दू धर्म के पदा में	
(७) राष्ट्रीयता के महान् प्रेरक	
(८) दार्शनिक विचार धारा	
(९) निधन	
<u>तृतीय अध्याय</u>	शिक्षा की प्रकृति २१ - ३६
(१) शिक्षा का तात्पर्य	
(२) शिक्षा का स्वरूप	
<u>चतुर्थ अध्याय</u>	शिक्षा के उद्देश्य ४० - ४५
(१) आध्यात्मिक विकास का उद्देश्य	
(२) धार्मिक तथा नैतिक विकास	
(३) सामाजिक एकता का विकास	



(४) मानव कल्याण का उद्देश्य

(५) सरल जीवन यापन का उद्देश्य

पंचम अध्यायः

शिक्षा का पाठ्य-क्रम

४६ — ६०

(१) धार्मिक शिक्षा

(२) आध्यात्मिक शिक्षा

(३) नैतिक शिक्षा

(४) व्यक्तित्व का विकास

(५) समाज सुधारक दृष्टिकोण

(६) स्त्री शिक्षा

(७) व्यक्तित्व का समग्र विकास

षष्ठम अध्याय

गुरु शिष्य सम्बन्ध

६१ — ६६

(१) गुरु का पद

(२) गुरु की महत्ता

(३) विवेकानन्द की दृष्टि में शिष्य

(४) गुरु शिष्य का परस्पर सम्बन्ध

सप्तम अध्याय

उपसंहार

६७ — ७३

(१) शिक्षा दार्शनिक के रूप में विवेकानन्द का समन्वित मूल्यांकन

(२) निष्कर्ष

(३) भावी शोध-कर्त्ताओं के लिए सुझाव.



प्रथम अध्याय

प्रस्तावना

संस्कृत-संस्कृत-संस्कृत-संस्कृत-संस्कृत-संस्कृत-संस्कृत



भारतवर्षी को प्राचीन काल से ही महान् विभूतियों को जन्म देने का सौभाग्य प्राप्त रहा है । अलौकिक प्रतिभा से युक्त 'व्यास', 'बाल्मीकि', 'भारवि', 'कालिदास', 'बाण' और 'दण्डी' आदि को पाकर जिस प्रकार संस्कृत वाङ्मय शतशः कृतार्थी है, उसी प्रकार 'सूर' और 'तुलसी', 'रविदास' और 'दादू' तथा 'नानक' और 'कबीर' आदि महाकवियों को पाकर हिन्दी-वाङ्मय भी कृतार्थी है । आधुनिक युग में महर्षि दयानन्द सरस्वती, महात्मा गांधी, गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर, श्री अरविन्द घोष तथा स्वामी विवेकानन्द आदि को उच्च कोटि का स्थान प्राप्त है । शिद्दा दार्शनिक के रूप में विवेकानन्द ने जो कार्य किया है, वह सराहनीय है । विवेकानन्द एक असाधारण प्रतिभा से सम्पन्न, ज्ञानाश्रयी भक्तिशास्त्रा मूर्धन्य और युग प्रेरक एवं दार्शनिक थे, जिन्हें पाकर मध्ययुगीन भारत अपने गौरव को प्राप्त कर सका । विवेकानन्द न केवल शिद्दा दार्शनिक ही वरन् सच्चे देशभक्त, ज्ञानी तथा हिन्दू धर्म के प्रचारक के रूप में भी हमारे स्मृता आते हैं ।

अध्ययन का महत्त्व एवं आवश्यकता :

जीवन को सुन्दर एवं सौम्य बनाने की प्रवृत्ति नैसर्गिक है । प्रत्येक व्यक्ति को यह आन्तरिक प्रेरणा होती है कि उसका जीवन सुखमय हो और अपने जीवन में वह अधिक से अधिक शारीरिक, मानसिक एवं आत्तिक सुख-शान्ति प्राप्त कर सके । यह समस्त बातें शिद्दा द्वारा ही प्राप्त की जा सकती हैं । क्योंकि इन समस्त सुखों की आधार-शिला शिद्दा पर ही टिकी है । अतः शिद्दा के अध्ययन द्वारा ही व्यक्ति अपने सम्पूर्ण जीवन को सुन्दर बना सकता है । मानव जीवन की सुन्दरता व लक्ष्यपूर्ति में जिन उपकरणों एवं साधनों की आवश्यकता है उनमें शिद्दा प्रमुख है ।





### अध्ययन का महत्व :

मानव जीवन में अध्ययन का विशेष महत्व है । मनुष्य का प्रत्येक कार्य इसी पर निर्भर करता है । मानव जगत को छोड़कर यदि हम समस्त प्राणिजों प्राणियों के व्यवहार और उसके जीवन को देखें तो प्रतीत होता है कि अपने जीवन को सुखमय बनाने की थोड़ी बहुत प्रवृत्ति सभी में पायी जाती है । यही प्रवृत्ति प्राणी को सीखने के लिये प्रेरित करती है । जो प्राणी जितना अधिक ज्ञान प्राप्त कर लेता है उसका जीवन उतना ही अधिक सुखमय हो जाता है । यही कारण है कि मानव-जीवन ज्ञानार्जन की दृष्टि से सर्वोत्तम होने के कारण अन्य समस्त प्राणियों की अपेक्षा अधिक सुख सम्पन्न है । भौतिक वातावरण की परिस्थितियों में अपनी जीवन धारा को प्रवाहित करने के लिये वे भी अनेक प्रकार के प्रयत्न करते हैं । मानव का वातावरण केवल भौतिक सीमा तक ही सीमित नहीं है, बल्कि उसका मानसिक, आध्यात्मिक एवं सामाजिक वातावरण भी है । अतः इन विभिन्न प्रकार के वातावरणों में किस प्रकार वह अपना विकास कर सकता है और साथ ही साथ वह इन वातावरणों में अधिक से अधिक अनुकूलन प्राप्त कर सकता है ? यह अध्ययन के द्वारा ही सम्भव हो सकता है । मानव जीवन का क्या उद्देश्य है ? इस प्रश्न का उत्तर सगलता से नहीं दिया जा सकता । इसके बारे में मानव चिकित्सक से सोचना आया है । इसके रूपर मानव की विचारधारा दर्शन के रूप में सम्बद्ध हुयी है । जीवन का रहस्य कोई नहीं खोज पाया है । किन्तु यदि एक दृष्टिकोण से देखें तो यह ज्ञात होता है कि मानव जीवन के लक्ष्य को भी अध्ययन द्वारा ही बहुत कुछ सीमा तक निर्धारित किया जा सकता है । प्राचीन काल से ही विद्वानों की यह सम्मति रही है कि मानव बहुत कुछ अंश तक अन्य जीवधारियों के जीवन के समान है । किन्तु बुद्धि के आधार पर मानव अन्य प्राणियों से अत्यन्त श्रेष्ठ है । इसी बुद्धि का प्रयोग करके वह समस्त परिस्थितियों, प्राचीन काल, वर्तमान तथा भूतकाल के होने वाली



घटनाओं का अध्ययन करता है । जिसके द्वारा वह अपने देश की परिस्थितियों से अवगत होता है । अध्ययन के द्वारा ही मानव महान् आत्माओं की विचार-धाराओं, उनकी शिक्षा-दर्शन आदि से प्रभावित होता है ।

### (१) राष्ट्रीय महत्व :

स्वामी विवेकानन्द देश को स्वतन्त्र कराना चाहते थे और विदेशी शिक्षा-प्रणाली का भारतीयकरण करना चाहते थे । इस दृष्टि से उन्होंने राष्ट्रीय शिक्षा की रूप रेखा तैयार की । राष्ट्रीय शिक्षा का अर्थ उस शिक्षा से है जो राष्ट्र के नियन्त्रण में राष्ट्र के लोगों को राष्ट्रीय पद्धति से दी जाती है । इस दृष्टि से उन्होंने शिक्षा के देश की सम्यता, भाषा एवं संस्कृति के अध्ययन पर बल दिया ।

### (२) अन्तर्राष्ट्रीय महत्व :

आधुनिक युग में अन्तर्राष्ट्रीयता का महत्व दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है । सभी देश एक दूसरे के इतने निकट आ गये हैं कि एक देश में होने वाली महत्वपूर्ण या भीषण घटना संसार के अन्य देशों को प्रभावित करती है । आज वह समय बीत चुका है जब एक देश अक्की प्राकृतिक सीमाओं के धिरे होने के कारण अपने को सुरक्षित समझता था तथा अन्य देशों से अलग रह सकता था । आज हिमालय जैसे ऊँचे पहाड़ तथा प्रशान्त महासागर जैसे समुद्र को बड़ी सरलता से पार किया जा सकता है ।

समस्त विश्व को एकता के सूत्र में आबद्ध करना आज समय की सबसे बड़ी आवश्यकता है । अतः स्वामी विवेकानन्द ने शिक्षा में अपने देश की भाषा, संस्कृति तथा सम्यता के साथ-साथ अन्य देशों की भाषा एवं संस्कृति के अध्ययन पर बल दिया उनका विश्वास था कि इस प्रकार की शिक्षा से विभिन्न राष्ट्रों के बीच समझदारी तथा सद्भावना स्थापित हो सकेगी ।



### (३) धार्मिक महत्त्व :

स्वामी विवेकानन्द धार्मिक प्रवृत्ति के पुरुषा थे तथा आध्यात्मिक विकास के लिये धार्मिक शिक्षा जरूरी मानते थे । उनका विश्वास था कि पत्येक विद्यालय में विभिन्न धर्मों की शिक्षा दी जाये । विद्यालय बालक के सम्मुख ऐसा आदर्श उपस्थित करें कि वह ईश्वर प्राप्ति, मानव कल्याण तथा देश के कल्याण को अपना आदर्श माने तथा अपनी आत्मा के विकास के लिये प्रयत्न करे । परमात्मा की शक्ति को अधिक से अधिक मात्रा में धारण करने के लिये एक सुदृढ़ शरीर का निर्माण आवश्यक है ।

### नैतिक महत्त्व :

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार नैतिकता एवं नियमित व्यैक्तिक तथा सामाजिक व्यवहार है जो एक समाज को जीवित रखता है । नैतिक विकास के लिये उन्होंने यह बतलाया कि बालकों में उत्तम शारीरिक, मानसिक एवं भावात्मक आदतों का निर्माण किया जाये । तथा उनके प्राकृतिक संवेगों का उचित दिशा में मार्गान्तीकरण किया जाये । हमारे अतिरिक्त विवेकानन्द का विश्वास था कि नैतिक शिक्षा को राष्ट्रीय शिक्षा में महत्त्व दिया जाय ।

### (३) अध्ययन की आवश्यकता :

अन्य प्राणियों की अपेक्षा मानव को अध्ययन की आवश्यकता होती है, क्योंकि एक तो उसका वातावरण बहुत विस्तृत होता है और दूसरे उसका शैशव काल तथा व्यस्कावस्था का समय इतना दीर्घ है कि जीवन की विभिन्न क्रियाओं में भाग लेने की सामर्थ्य-प्राप्ति हेतु उसे दीर्घकालीन अध्ययन की आवश्यकता पड़ती है । मानव अपने जीवन के उद्देश्यों की पूर्ण प्राप्ति नहीं कर सकता, यदि वह शारीरिक व मानसिक शक्तियाँ होते हुये भी किसी क्षेत्र में अपूर्ण है या अशिक्षित है । अतः किसी भी उद्देश्य को प्राप्त करने के लिये



अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है । मनुष्य में नैतिक, धार्मिक तथा सामाजिक गुणों का समावेश हो जाये, इसके लिये भी अध्ययन की आवश्यकता होती है । क्योंकि मानव में हो केवल यह क्षमता होती है कि अपनी बुद्धि के द्वारा वह विरोधी गुणों में भेद करके सद्गुण को ग्रहण कर दुर्गुण का त्याग कर सकता है । जीवन के नैतिक मूल्य क्या है ? तथा उनका क्या महत्व है ? इन सब का आभास उसे अध्ययन द्वारा होता है । मानव को समस्त क्रियाओं के पीछे प्रमुख लक्ष्य उसकी स्वयं जीवित रहने की प्रवृत्ति होती है, जिस के बिना अन्य क्रियायें सम्भव ही नहीं हैं । अपने शरीर को दृढ़ व हृष्ट-पुष्ट बनाना, अपने विभिन्न अवयवों का प्रयोग करना । स्वयं को स्वस्थ रखना और अपनी समस्त शारीरिक शक्तियों का प्रयोग सीखना ये सब उसकी स्वयं जीवित रहने की प्रवृत्ति से ही सम्बन्ध रखती हैं और इन सबको वह अध्ययन द्वारा ही सीख पाता है । स्वयं जीवित रह कर ही उसकी कार्य-सिद्धि नहीं होती क्योंकि उसको स्वयं जीवित रहने के लिये जिस शिद्धा की आवश्यकता है वह अन्दर से नहीं निकलती बल्कि मानव के अपने वातावरण के साथ सम्पर्क में आने पर दोनों ओर से उत्पन्न क्रियाओं व प्रतिक्रियाओं का परिणाम होती है ।

वातावरण से अनुकूलन :

मानव के वातावरण में केवल भौतिक वातावरण ही नहीं आता बल्कि उसका सामाजिक वातावरण भी सम्मिलित है । यथार्थ में मानव को जो शिद्धा मिलती है वह उसके अपने सामाजिक वातावरण के माध्यम से ही प्राप्त होती है । यद्यपि प्राकृतिक वातावरण अपने भौतिक रूप में उसे शिद्धा प्रदान करता है । तात्पर्य यह है कि सामाजिक शिद्धा भी मानव के वातावरण को बनाने का प्रमुख द्रोत्र है, क्योंकि इसी वातावरण के सम्पर्क में आकर उसकी उस वातावरण के प्रति और उस वातावरण की उसके प्रति जो क्रियायें व प्रतिक्रियायें होती हैं, वही अध्ययन का परिणाम होती हैं, क्योंकि मानव





मृत्युपर्यन्त उस वातावरण में रहता है, अतः यह कहा जा सकता है कि अध्ययन भी आजीवन चलने वाली प्रक्रिया है तथा मनुष्य को जीवित रहने के साथ-साथ मानव को अपने वातावरण को भी जीवित रखने की प्रेरणा अध्ययन द्वारा प्राप्त होती है । अध्ययन केवल एक मानव के लिये ही नहीं वरन् सम्पूर्ण जीवन तथा समाज के लिये आवश्यक होता है । वास्तव में अध्ययन समाज का एक भोजन है । समाज का मनुष्य की तरह भौतिक शरीर नहीं है, वह तो एक अदृश्य सत्ता है जो मनुष्य के सामूहिक विचारों, आदर्शों, आशाओं, उद्देश्यों, संस्कृतियों आदि को सम्बद्धता की परिचायक है और उनकी गति व उन को सजीव रखने का कार्य अध्ययन करता है । अतः समाज में जीवित रहने के लिये अध्ययन की अत्यन्त आवश्यकता होती है ।

मानव को सम्य बनाने हेतु अध्ययन की आवश्यकता :

मानव को सम्य बनाने में अध्ययन महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है । प्रारम्भिक अवस्था में मानव शिशु भी अन्य पशुओं की भाँति बिल्कुल असम्य होता रहै । उसकी आदि कालीन बर्बरता अथवा असम्यता को केवल शिक्षा के अध्ययन द्वारा ही दूर किया जा सकता है । स्वतन्त्र भारत में मानव को सम्य बनाने के लिये अध्ययन की आवश्यकता को स्वीकार किया गया है । इसके द्वारा मानव ज्ञान में वृद्धि होती है, जिससे वह सुसंस्कृत एवं सम्य बन जाता है । प्रत्येक राष्ट्र की उन्नति वहाँ के शिक्षित एवं अध्ययनशील व्यक्तियों के अनुपात में ही आँकी जाती है ।

आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु अध्ययन की आवश्यकता :

प्रत्येक मानव की व्यक्तिगत, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक तथा अवकाश काल सम्बन्धी अनेक आवश्यकतायें होती हैं । इन आवश्यकताओं की पूर्ति अध्ययन द्वारा ही की जा सकती है ।



व्यवसायिक कुशलता की पूर्ति हेतु अध्ययन की आवश्यकता :

अध्ययन के द्वारा मानव को व्यवसायिक कुशलता प्राप्त करने में सहायता मिलती है । इसके द्वारा मनुष्य को विभिन्न व्यवसायों का ज्ञान प्राप्त होता है । जिसके आधार पर वह अपनी योग्यता के अनुसार किसी भी व्यवसाय को चुनकर अपना जीविकोपार्जन कर सकता है ।

आत्म-निर्भरता की प्राप्ति हेतु अध्ययन की आवश्यकता :

अध्ययन के द्वारा व्यक्ति में आत्मनिर्भरता का भाव जागृत होता है । आत्म निर्भर होने पर व्यक्ति में आत्म-विश्वास उत्पन्न होता है । इससे वह जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सफलतापूर्वक आगे बढ़ सकता है ।

इस प्रकार हमने देखा कि मानव जीवन में अध्ययन का क्या महत्व है तथा इसकी क्या आवश्यकता है । अध्ययन के द्वारा व्यक्ति का सर्वांगीण विकास सम्भव हो स जाता है । उसमें आत्म विश्वास जागृत हो जाने के कारण वह जीवन के किसी भी क्षेत्र में दूसरों पर निर्भर नहीं रहता । अतः व्यक्ति को अच्छा नागरिक बनाने के लिये उसके जीवन को समस्त सुखों से परिपूर्ण करने के लिये अध्ययन की अत्यन्त आवश्यकता होती है ।

(४) अध्ययन के उद्देश्य :

मानव जीवन के प्रत्येक कार्य या पड़ाव एवं दैनिक जीवन की प्रत्येक क्रिया को सफल बनाने के लिये उद्देश्य का विशेष महत्व होता है । बिना उद्देश्य के हम जीवन के किसी भी क्षेत्र में सफल नहीं हो सकते । अध्ययन के क्षेत्र में भी यही बात लागू होती है । इसका एक मात्र कारण यह है कि प्राकृतिक बालक तथा प्रगतिशील एवं विकसित समाज की आवश्यकताओं तथा आदर्शों के बीच एक गहरी खाई होती है । इस खाई को पाटने के लिये अध्ययन ही एक ऐसा साधन है जो किसी उद्देश्य के अनुसार समाज की बदलती हुई आवश्यकताओं तथा आदर्शों



को दृष्टि में रखते हुये बालक को मूल प्रवृत्तियों का विकास इस प्रकार करता है कि व्यक्ति तथा समाज दोनों ही विकसित होते रहें । जब व्यक्ति को किसी उद्देश्य का स्पष्ट ज्ञान हो जाता है तो उसके मन में वृद्धता तथा आत्म-बल जागृत हो जाता है । उद्देश्यहीन अध्ययन को प्राप्त करके बालक में उदासीनता उत्पन्न हो जाती है । परिणामस्वरूप उसे अपने द्वारा किये गये किसी भी कार्य में सफलता नहीं मिल पाती, जिससे उसका मानसिक, शारीरिक, सामाजिक एवं नैतिक पतन होने लगता है । उद्देश्य के ज्ञान के बिना शिक्षक उस नाविक के समान होता है जिसे अपने लक्ष्य का ज्ञान नहीं तथा उसके विद्यार्थी उस पतवारविहीन नाविका के समान है जो समुद्र की लहरों में थपेड़े खाती हुई तट की ओर बढ़ती जा रही है । अतः अध्ययन के उद्देश्यों को हमने निम्न प्रकार से व्यक्त किया है -

#### चरित्र निर्माण -

---

अध्ययन के उद्देश्यों में चरित्र निर्माण एक बहुत महत्वपूर्ण उद्देश्य है । मानव को मानव बनाकर रहना सीखना शिक्षा का परम लक्ष्य है और व्यापक रूप में ये सब बातें चरित्र निर्माण के अन्तर्गत आ जाती हैं । व्यक्तिगत चरित्र ही सामाजिक व राष्ट्रीय स्तर को ऊँचा उठाता है और उसकी उन्नति का प्रोत्साहन व साधन है । हमारे प्राचीन साहित्य में भी चरित्र निर्माण को अध्ययन करने का उद्देश्य स्वीकार किया गया है । यदि अध्ययन द्वारा व्यक्ति के चरित्र में सत्य-शिवम्-सुन्दरम् तीनों नैतिक गुणों का समावेश हो जाता है तो उसका चरित्र-निर्माण नामक उद्देश्य पूर्ण हो जाता है । सच्चरित्र व सदाचारी व्यक्ति ही शिक्षा कहे जाने का अधिकारी है । व्यक्ति में चरित्र की सरलता, शुद्धता, साम्यता आदि ही चरित्र-निर्माण के अन्तर्गत होते हैं ।

#### सन्तुलित विकास :

---

अनेक शिक्षा शास्त्रियों ने व्यक्ति के व्यक्तित्व से सन्तुलित विकास को



अध्ययन का उद्देश्य माना है । प्रसिद्ध शिक्षा शास्त्री पेस्टालाजी ने कहा है कि मानव-समाज का विकास व उसकी उन्नति व्यक्तित्व विकास के आधार पर हो सकती है और उसके लिये यह आवश्यक है कि व्यक्ति को पूर्ण विकास का अवसर प्राप्त हो । व्यक्ति के पूर्ण विकास से तात्पर्य उसका शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक तीनों प्रकार का विकास हो । अध्ययन का उद्देश्य इन शक्तियों को पूर्ण रूप से विकसित होने देना है । जिससे व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का पूर्ण विकास कर सके ।

ज्ञान में वृद्धि :

शिक्षा का मानव को ज्ञान देने का उद्देश्य चिरकाल से चला आ रहा है और अध्ययन द्वारा प्राप्त ज्ञान में वृद्धि होती है । अतः ज्ञान में वृद्धि करना भी अध्ययन का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य है । ज्ञान केवल ज्ञान के लिये वह कोरी आदर्शवादिता है, इसमें तथ्य मालूम नहीं पड़ता । कोरा ज्ञान होने पर व्यवहार कुशलता के अभाव में व्यक्ति अपना जीवन सफल नहीं कर पाता । ज्ञान का मूल्य तभी है जब वह व्यक्ति को व्यवहारकुशल बनाने अर्थात् ज्ञान व्यक्ति के व्यवहार, विचार, चिन्तन, मनोवृत्ति आदि में फलकता हो । यदि ज्ञान प्रयोग की कसौटी पर नहीं उतरता, यदि उसका व्यक्ति उचित उपयोग नहीं कर पाता तो वह उसके मस्तिष्क में पड़ा सड़ता रहे लेकिन संसार में उसकी कोई कीमत नहीं । अतः ज्ञान का उद्देश्य तो बहुत अच्छा है परन्तु ज्ञान, ज्ञान के लिये न होकर प्रयोग के लिये हो और व्यक्ति उसको अपने व्यवहार में प्रयोग करने की दायता प्राप्त कर ले । अन्यथा ज्ञान को ज्ञान के लिये शिक्षा का आदर्श स्वीकार करना दाशैनिकों की तर्क-पिपासा को भले ही शान्त कर दे, व्यवहारिक जीवन में उसका कोई मूल्य नहीं है ।





### जीविज्ञोपायन का उद्देश्य :

मनुष्य को जीवित रहने के लिये जीविज्ञोपायन की कामता प्राप्त कर लेना बहुत आवश्यक है । स्वयं को जीवित रखना प्रकृति का सबसे पहला नियम है तथा मनुष्य को सब क्रियायें भौतिक रूप में स्वयं को जीवित रखने के लिये ही होती हैं । कोई व्यक्ति चाहे कितना ही ज्ञान प्राप्त करने की पिपासा रखता हो परन्तु वह पिपासा तभी महत्व रखती है जब उसकी उदर पूर्ति होती रहती है । अतः जीविज्ञोपायन की कामता प्राप्त कर लेना प्रत्येक व्यक्ति के लिये आवश्यक है और उसकी शिक्षा को यह वह कामता प्राप्त करा देना अत्यन्त महत्व रखता है । अतः अध्ययन द्वारा व्यक्ति को अपनी जीविका चलाने में अत्यन्त सहायता मिलती है ।

### व्यक्तित्व का विकास और समाज-हित :

बहुधा इन दोनों उद्देश्यों में मतभेद अथवा पारस्परिक विरोध माना गया है । यद्यपि बिना इसकी व्याख्या किये हुये हम यह नहीं कह सकते कि संगतपूर्ण विचार क्या है । बाह्य रूप में दोनों एक दूसरे के प्रतिद्वंद्वी नजर आते हैं । जैसा कि एक विद्वान ने कहा है `` समाज के हितों और उनके सदस्यों के हितों में किसी एक समय पर सामन्जस्य नहीं हो सकता । वे विरोधी ही रहेंगे, निश्चित रूप में तथा प्रकृति से वे एक दूसरे के विरोधी हैं `` । व्यक्तित्व के विकास का उद्देश्य नवीन नहीं है । प्राचीन काल से शिक्षा के अध्ययन को व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास का साधन माना गया है । व्यक्तित्व के विकास के उद्देश्य की आधुनिक काल में नन महोदय ने दार्शनिक तथा मनोवैज्ञानिक दोनों दृष्टियों से अपनी पुस्तक में व्याख्या की है । व्यक्तित्व के विकास को उन्होंने बहुत महत्व दिया है । उनका कहना है कि `` मानव-जगत में मनुष्य व स्त्रियों के स्वतन्त्र व्यवहार के बिना कोई भी हितकारी भाव पैदा नहीं हो सकता । अतः अध्ययन का कोई सर्वमान्य उद्देश्य निर्धारित करना है तो वह व्यक्तित्व के विकास के अतिरिक्त कोई दूसरा



नहीं हो सकता ।

समाज हित के उद्देश्यों को दो प्रकार से माना जाता है । प्रथम राष्ट्रहित और व्यक्ति का राष्ट्रहित के लिये जिवित रहना तथा द्वितीय नागरिकता व सामाजिक कुशलता । इन दोनों विचारों से स्पष्ट है कि प्रथम उत्कट उग्र-रूप में समाज या राष्ट्र के हित को सामने रखता है और व्यक्ति को उसके नीचे रखता है । दूसरा रूप जतंत्रात्मक है और समाज-हित तथा व्यक्ति के हित में समन्वय रखता हुआ समाज को प्रमुक्ता प्रदान करता है ।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है । इस कथन में बहुत रहस्य छिपा हुआ है । एक के बिना दूसरे का अस्तित्व हो नहीं सकता । इस प्रकार व्यक्ति व समाज को एक दूसरे से भिन्न करके नहीं देखा जा सकता । दोनों का हित दोनों के हितों की रक्षा पर निर्भर है । अतः शिक्षा का अध्ययन व्यक्ति को विकास के पूर्ण अवसर प्रदान करके उसे एक कुशल नागरिक बनाता है ।

प्रस्तावित शोध प्रबन्ध के उद्देश्य :

मानव जीवन में उद्देश्यों की भूमिका सर्वप्रमुख है । उद्देश्यों की भूमिका सर्वप्रमुख है । उद्देश्यों के आवेग में मानव व जीवन की कल्पना की जा सकती है, जीवन की गतिशीलता, उन्नयता एवं अग्रसरता का प्रेरणा स्रोत उसके उद्देश्यों में निहित होता है । प्रत्येक शोध प्रबन्ध के अपने उद्देश्य होते हैं । प्रस्तावित शोध प्रबन्ध के उद्देश्य निम्न हैं -

- (१) स्वामी विवेकानन्द के ग्रन्थों के आधार पर शिक्षा का स्वरूप प्रस्तुत करना ।
- (२) स्वामी विवेकानन्द द्वारा प्रतिपादित जीवन उद्देश्यों की दृष्टि से शिक्षा के उद्देश्यों पर विचार करना ।
- (३) उनके दार्शनिक, धार्मिक, आध्यात्मिक एवं शैक्षिक विचारों की पृष्ठभूमि में पाठ्यक्रम पर विचार करना ।



- (४) स्वामी विवेकानन्द द्वारा अपने ग्रन्थों में प्रतिपादित शिदाक तथा शिदाार्थों के स्वरूप की रूप रेखा प्रस्तुत करना ।
- (५) जीवनोद्देश्यों की पृष्ठभूमि में विकसित दिशा के उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु शिदा पद्धतियों की मीमांसा प्रस्तुत करना ।
- (६) प्रचलित दिशा के सन्दर्भ में स्वामी विवेकानन्द के शैदाक विचारों का मूल्यांकन करना ।

अध्ययन की शोध विधि :

---

प्रत्येक शोध ग्रन्थ की रचना करने हेतु किसी एक शोध विधि का सहारा लेना पड़ता है । जिसके आधार पर शोध प्रबन्ध को सरलतापूर्वक पूर्ण किया जा सके ।

स्वामी विवेकानन्द द्वारा रचित कृतियों के आधार पर उनके शैदाक विचारों का पता लगाने हेतु ऐतिहासिक विधि को अपनाया गया है तथा उन की निम्न कृतियों से तथ्यों का संग्रह किया गया है -

- (१) दिव्य जीवन
- (२) योग समन्वय ।
- (३) गीता प्रबन्ध ।
- (४) भारत का भस्तिष्क ।
- (५) भारतीय संस्कृति के आधार ।
- (६) मानव चक्र ।
- (७) भारत में पुनर्जागरण ।
- (८) एकीकृत शिदा ।
- (९) राष्ट्रीय शिदा की प्रणाली ।
- (१०) मानव एकता का आदर्श ।



## द्वितीय अध्याय

# जीवन परिचय

[illegible]





## जीवन परिचय एवं तत्कालीन विभिन्न परिस्थितियाँ

भारतीय परम्परा के अनुसार साहित्यकार अपने व्यक्तित्व को जन-जीवन से तदाकार कर देता है । उसको अपने पृथक् अस्तित्व या व्यक्तिगत का अहं-कार नहीं रहता । लोक मानस ही उसका मानस बन जाता है । विवेकानन्द ने तो अपने सम्बन्ध में ऐसे संकेत बहुत दिये हैं जो उनके जीवन चरित्र के लिखने के लिये निसंदिग्ध एवं प्रायोगिक सामग्री को लिखने में सहायक है । उनके अधिकांश कथनों के चरित्र मूलक के कहीं अर्थ हैं और वे मुख्य भी प्रतीत होते हैं । महान आत्माओं के प्रति जन-जीवन में जो व्यापक श्रद्धा रही और उनकी अलौकिक शक्ति के सम्बन्ध में जो किवदन्तियाँ प्रचलित होती रही उनके परिणाम स्वरूप वे महान् आत्मायें धीरे-२ ऐतिहासिक पुरुषों से पौराणिक पुरुष होते गये। इन्हीं सब कारणों से इन पुरुषों के जीवन में तथ्यों के अवलोकन से अविकृत तथा प्रमाणिक ज्ञान उपलब्ध नहीं हो सकता है । विवेकानन्द के जीवन-चरित्र को संघटित करने में भी ये ही सब असुविधायें हैं ।

दार्शनिक दृष्टिकोण से तथा साहित्य-ममीक्षा के लिये विवेकानन्द के जीवन चरित्र को हर छोटी-बड़ी घटनाओं को जानने की आवश्यकता न होने पर भी उसके सम्पूर्ण जीवन की गतिविधि के उस स्वरूप तथा उन घटनाओं से परिचित रहना अनिवार्य है जो उनमें दार्शनिक रूप को रूपायित करती है । विवेकानन्द के जीवन-चरित्र के लिये अन्तः साक्ष्य की सामग्री तो बहुत थोड़ी है परन्तु बाह्य साक्ष्य के साथ उसका सामन्जस्य स्थापित करके विवेकानन्द के जीवन चरित्र को इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है ।

### रामकृष्ण परमहंस का प्रभाव :

जिन दिनों स्वामी विवेकानन्द कालेज के छात्र थे उनके अन्दर धार्मिक एवं आध्यात्मिक सत्त्यों की जिज्ञासा प्रबल हो उठी । उस समय बंगाल में ब्रह्म समाज का बड़ा प्रभाव था । केशवचन्द्र एवं महर्षि देवेन्द्र नाथ ठाकुर प्रभृति



ब्रह्म समाजी नेताओं ने उन्हें प्रभावित किया लेकिन ये उनकी धार्मिक पिपासा को शान्त न कर सके । युवक विवेकानन्द हमकी शान्ति के लिये एक सच्चे गुरु की खोज में था और अन्त में रामकृष्ण परमहंस के रूप में उनको गुरु और जीवन का सच्चा पथ-प्रदर्शक मिल गया । उन दिनों बंगाल में रामकृष्ण परमहंस का नाम बहुत फैल चुका था । रामकृष्ण परमहंस के बाल्यावस्था का नाम गयाधर था । उनका जन्म बंगाल के हुगली जिले में ग्राम कामारपुर्णमें हुआ था । उनके पिता खुदीराम - चट्टोपाध्याय बड़े निष्ठावान दीन ब्राह्मण थे । उनकी धर्म में अगाध श्रद्धा का प्रभाव रामकृष्ण पर भी पड़ा । लगभग १८ वर्ष की अवस्था में रानी रासमणि के दक्षिणेश्वर मन्दिर में पूजा करने के लिये नियुक्त हुये । यहीं उन्होंने अपने आपको महाकाली के चरणों में पूर्णतः लीन कर लिया । अब गयाधर रामकृष्ण परमहंस हो गये और उन्हें अनुभव हुआ कि सब धर्म एक ही सनातन धर्म के अंश तथा अंग हैं । यही कारण था कि उन्होंने किसी धर्म की आलोचना नहीं की । उनके विचार में ईश्वर निर्गुण और अजेय था । मूर्ति पूजा को भी वे आध्यात्मिक आवश्यक्ता तथा पाश्चात्य संस्कृति को भौतिकवादी समझते थे ।

स्वामी विवेकानन्द पर भी इन्हीं श्री रामकृष्ण परमहंस का प्रभाव पड़ा और वे उनकी कृपा से परमात्मा में अगाध श्रद्धा वाले बन गये । उनका अब सच्चा गुरु और पथ प्रदर्शक मिल गया । इस गुरु ने अपने शिष्य के तर्कों को अगाध श्रद्धा में परिणत कर दिया । उनके अन्दर जो भी नास्तिक भावनाएँ थीं वे लुप्त हो गईं और उनकी जीवन धारा बदल गयी । अब स्वामी विवेकानन्द एक सन्यासी के रूप में विश्व कल्याण के मार्ग का पथिक बन गया । उन्होंने सम्पूर्ण भारत का भ्रमण किया । हिमालय की ऊँचाई के तीर्थ स्थानों से लेकर



कुमारी अन्तरंग के तीर्थों तक के दर्शन किये । वे गांव-गांव, फाँपड़ी-फाँपड़ी और महलों में गये । उन्होंने भारत की दशा का अध्ययन किया । राजा से लेकर रंक तथा अस्पृश्यों तक के बीच में रहे । हमसे उन्हें भारत के वास्तविक चित्र देखने में सहायता मिली ।

जन्म :

स्वामी विवेकानन्द का जन्म तत्कालीन भारत की राजधानी कलकत्ता में १२ जनवरी, १८६३ को एक क्षत्रिय परिवार में हुआ था । उनके पूर्व आश्रम का नाम नरेन्द्र नाथ दत्त अथवा ' नरेन्द्र ' था । उनके पिता का नाम श्री विश्वनाथ दत्त तथा माता का नाम श्रीमती भुवनेश्वरी देवी था । दत्त घराना सम्पन्न एवं प्रतिष्ठित था, दान-पुण्य-विद्वता और साथ ही स्वतन्त्रता की तीव्र भावना के लिये प्रख्यात था । बालक नरेन्द्र नाथ के जीवन पर असाधारण माता पिता के चरित्र एवं स्वभाव का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था । नरेन्द्र नाथ के पितामह दुर्गाचरण दत्त फारसी तथा संस्कृत के विद्वान थे । उनकी ददाता कानून में भी थी । किन्तु योग ऐसा कि पुत्र विश्वनाथ के जन्म के बाद उन्होंने संगार से विरक्ति ले ली और साधु हो गये । उस समय उनकी अवस्था केवल पच्चीस वर्ष की थी ।

बाल्यकाल से ही बालक नरेन्द्र को धार्मिक विषयों में बड़ी रुचि थी । उसे ध्यानावस्था की मुद्रा में बैठना भी रुचिकर लगता था लेकिन साथ ही उसमें बाल्यावस्था में बाल सुलभ नटखटपन भी था । वह अपनी अदम्य शक्ति के कारण कभी-कभी इतना अस्थिर हो जाता था कि उसे वश में करना कठिन हो जाता था । लेकिन इस चंचलता के होते हुए भी बुरे विचारों का किंचित मात्र भी उस पर प्रभाव न था और असत्य उसके लिये असहनीय था ।

शिकागो विश्व धर्म सम्मेलन ११ सितम्बर १८९३ ई०

खेती के नरेश महाराजा अजीत सिंह ने स्वामी विवेकानन्द को अमेरिका



जाने की आर्थिक सहायता प्रदान दी थी । शिकागो पहुंचने पर स्वामी विवेकानन्द के लिये सबसे बड़ी कठिनाई यह सामने आयी कि किस प्रकार से उक्त धर्म सम्मेलन में स्थान प्राप्त किया जाये । वक्ताओं के नाम पहले ही निश्चित हो चुके थे । सौभाग्य से शिकागो में स्वामी जी का परिचय हार्वर्ड विश्व-विद्यालय के एक प्रोफेसर के साथ हो गया । उसने सम्मेलन में स्वामी जी को स्थान दिलाने में बड़ी सहायता की । उन्हें इस सम्मेलन में भारत के प्रतिनिधि के रूप में बोलने का अवसर मिल गया । स्वामी विवेकानन्द ने जब यहाँ पर भाषण के प्रारम्भ में उपस्थित श्रोताओं को `` अमेरिका के भाइयों तथा बहनो `` कहकर सम्बोधित किया तो श्रोताओं ने खड़े होकर हर्षी ध्वनि की क्योंकि इस प्रकार का समानता सूचक सम्बोधन अभी तक उन्होंने नहीं सुना था । इस सम्मेलन में स्वामी जी का वेदान्त विषय पर धारा प्रवाह भाषण हुआ । इस हृदयस्पर्शी आध्यात्मिक भाषण को सुनकर सब मंत्रमुग्ध हो गये । उनके ओजसपूर्ण वाग् धारा ने सबके हृदय को स्पन्दित कर दिया । पश्चिम को प्रथम बार भारत की आध्यात्मिकता का बोध हुआ ।

शिकागो धर्म सम्मेलन के उपरान्त स्वामी जी की कीर्ति देश देशान्तरों में फैल गई । लेकिन उन्हें सम्मेलन की महान् सफलता पर किंचित मात्र भी प्रसन्नता नहीं हुई । उन्होंने अश्रुपूर्ण नेत्रों से यही कहा, `` मैं हम ख्याति को लेकर क्या करूंगा जब मेरी मातृभूति कष्टमय जीवन व्यतीत कर रही है । ``

स्वामी विवेकानन्द एक दार्त्रीय परिवार के सदस्य थे । जो कलकत्ते में रहते थे । इस प्रकार विवेकानन्द पैतृक संस्कारों से हिन्दू थे । उनका पालन पोषण हिन्दू परिवार में हुआ । इसी कारण विवेकानन्द ने हिन्दू धर्म का अधिक प्रचार किया तथा ज्यादा बल दिया । विवेकानन्द में हिन्दू धर्म के वृद्ध संस्कार थे । यही कारण है कि स्वामी विवेकानन्द में उच्च हिन्दू विचार तथा योग के संस्कार मिलते हैं ।





### पारिवारिक परिस्थितियाँ :

स्वामी विवेकानन्द का एक छोटा सा परिवार था । जिसमें विवेकानन्द के अलावा उनके माता-पिता थे । उन्होंने पहले बी० ए० तक शिक्षा प्राप्त की । पाँच वर्ष की अवस्था में नरेन्द्र को पाठशाला में प्रवेश कराया गया । कक्षा में नरेन्द्र होशियार बालक था । पुस्तकीय ज्ञान में उनकी कोई रुचि न थी । खेल-कूद, व्यायाम में उनकी विशेष रुचि थी । मैट्रिक पास करने के पश्चात् उन्होंने कालिज में दाखिला लिया । कालिज में उन्होंने इतिहास, साहित्य एवं दर्शन का अध्ययन किया । उनके सुन्दर शरीर, प्रखर प्रतिभा तथा बातचीत के सुन्दर ढंग ने कालिज में सभी को प्रभावित किया तथा उन्हें लोकप्रिय बना दिया ।

विवेकानन्द जी का घर का वातावरण धार्मिक था । माता-पिता की पूजा-पाठ में विशेष रुचि थी । इसलिये नरेन्द्र की भी धर्म-कर्म, पूजा-पाठ में रुचि हो गयी । नरेन्द्र की माँ उगे राभायण, महाभारत तथा पुराण सुनाया करती थी ।

इन धार्मिक चर्चाओं का उनके ऊपर अत्यधिक प्रभाव पड़ा और वे बहुत बड़े महात्मा बन गये । उनकी महानता, विद्वता एवं धर्मनिष्ठा सर्वविदित है ।

विवेकानन्द का बुद्धियुक्त तार्किक स्वभाव था । उन्होंने ब्रह्म समाज में भी कुछ समाधान पाने का यत्न किया । ब्रह्म समाज उस समय की एक प्रचलित धार्मिक, सामाजिक संस्था थी ।

विवेकानन्द की समकालीन विभिन्न परिस्थितियाँ एवं उसका प्रभाव :

विश्व की प्रगति के पथ पर प्रायः उथल-पुथल, आरोह-अवरोह एवं विषम परिस्थितियाँ आती रहती हैं । जिसके व्यक्तित्व में अपने युग को परिवर्तित करने की शक्ति होती है, जिसमें समाज विशेष का प्रतिनिधित्व करने की



सामर्थ्य होता है और जो लोक कल्याण कर सके, ऐसी युग-प्रवृत्त तथा महान् विभूतियां समय का आवश्यकता को पूर्ण करने के लिये ही विश्व में अवतरित होती हैं । गीता इगता प्रणाम प्रस्तुत करती है । इग तात की पुष्टि के लिये हम विवेकानन्द की समकालीन विभिन्न परिस्थितियों का अध्ययन करेंगे।  
**भौगोलिक परिस्थितियां :**  
 -----

विवेकानन्द कालीन भारत की परिस्थिति में कोई अन्तर नहीं आया, परन्तु उस समय मानव-वर्ग की सम्पत्ता और संस्कृति के साथ राजनयिक गति-विधियां, यहां की भौगोलिक परिस्थिति के कारण ही हुई । हिमालय की उत्तुंग घाटियों से प्रायः विदेशी आक्रमणकारी भारत में घुस आये थे । उस समय आवागमन, संचार और भौतिक-पर्यावरण को लांघने की वैज्ञानिक प्रगति न होने के कारण समुद्री व्यापार में नहीं हो पाता था ।

विवेकानन्द की समस्त कृतियों में भौगोलिक परिस्थितियों में कोई अंतर नहीं आया, परन्तु उस समय का समस्त कृतियों में उस समय के भारत की भौगोलिक परिस्थितियों का कुछ वर्णन मिलता है कि सन् १८६३ में शिकागो में होने वाले विश्व धर्म सम्मेलन में भाग लेने गये तथा वहां पर स्वामी विवेकानन्द ने वेदान्त के विषय में वह ओजस्वा भाषण दिया कि सम्पूर्ण अमेरिकी जनता मूक रह गई । इस प्रकार सम्पूर्ण यूरोप तथा भारत में अपने उच्च आदर्शों का प्रचार किया तथा राम कृष्ण मिशन की स्थापना की ।

**राजनैतिक परिस्थितियां :**  
 -----

विवेकानन्द कालीन राजनीतिक परिस्थितियां बड़ी विचित्र थी । उस समय प्रजातान्त्रिक-मूल्यों, समाजवादी दृष्टिकोणों और राष्ट्रिय भावनाओं का नागरिकों में ही क्या, शासक वर्ग में भी पूर्णतः अभाव था । स्वामी जी महान् क्षमयोगी थे । आज विश्व उनको एक महान आध्यात्मिक गुरु एवं दार्शनिक, मानवता का सच्चा प्रेमी, एक देश भक्त सन्त और क्षमयोगी के रूप में



आदर करता है। उन्होंने अपनी अद्वितीय प्रतिभा से प्राच्य एवं पाश्चात्य दर्शन, धर्म साहित्य, धर्म, इतिहास और सामाजिक एवं राजनीतिक विज्ञान का मनन किया था।

उन्हें पाश्चात्य वैज्ञानिक सफलताओं का भी पूर्ण ज्ञान था। राष्ट्र निर्माता के रूप में स्वामी विवेकानन्द जी का राजनीतिक दर्शन भी विशेष ध्यान देने योग्य है। स्वामी विवेकानन्द का विश्वास था कि प्रत्येक राष्ट्र के जीवन में एक ही प्रमुख सिद्धान्त सन्निहित है। ऐसे राष्ट्र में राजनीति की प्रमुखता है तो दूसरे में आर्थिक एवं औद्योगिक प्रगति की प्रमुखता है लेकिन भारतीय इतिहास में हमारे राष्ट्र की विशेषता धर्म है। भारत धर्म प्रधान देश रहा है। भारत में धार्मिक एकता एवं स्थिरता स्थापित करने की क्रियात्मक शक्ति रही है। जब कभी राजनीतिक अधिकार दुर्बल हुआ धर्म ने ही उसको पुनर्स्थापित करने के लिये शक्ति प्रदान की है। भारतीय जीवन का आधार धर्म ही रहा है। विविध सुधारों के अन्तर्गत में धर्म का ही स्रोत प्रवाहित हो रहा है। इस प्रकार स्वामी विवेकानन्द की राष्ट्रीयता का आध्यात्मिक सिद्धान्त हमारे राजनीतिक सिद्धान्त के लिये प्रथम देन है।

भारत की राजनीतिक विचारधारा के प्रति स्वामी जी की दूसरी बड़ी देन स्वतन्त्रता सम्बन्धी विचार है। स्वतन्त्रता के सम्बन्ध में उनका विचार व्यापक था। उन्होंने विकास के लिये स्वतन्त्रता के आलोक को आवश्यक बताया। उन्होंने यह व्यक्त किया कि 'शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक स्वतन्त्रता की ओर बढ़ना और दूसरों को ऐसा करने में सहायता देना ही मनुष्य का सबसे बड़ा मूल्य है। वे सामाजिक नियम जो इस प्रकार की स्वतन्त्रता के मार्ग में बाधा पहुंचाते हैं, हानिकारक हैं। उन्हें तुरन्त ही नष्ट कर देना चाहिये जो मनुष्य को स्वतन्त्रता के मार्ग की ओर अग्रसरित नहीं करते हैं।' उन्होंने कहा कि माया के बन्धनों से मुक्ति अथवा आध्यात्मिक स्वतन्त्रता ही हमारा लक्ष्य नहीं है लेकिन साथ-साथ मनुष्य की भौतिक सामाजिक और राजनैतिक स्वतन्त्रता भी प्राप्त करना लक्ष्य होना चाहिये।



स्वामी विवेकानन्द ने बड़ी दृढ़ता से लोकतन्त्रात्मक और समाजवादी सरकार का समर्थन किया था । वे जनवादी जनता के द्वारा और जनता के हितार्थी वाली शासन प्रणाली के मानने वाले थे । उनकी यह इच्छा रही कि भारत में इस प्रकार की सरकार की स्थापना हो जिसमें ब्राह्मणों की प्रतिभा एवं बुद्धि, चात्रियों की शक्ति और शौच, वैश्यों की व्यापारिक और औद्योगिक कुशलता एवं स्फूर्ति और शूद्रों की सेवा की भावना का समन्वय हो ।

स्वामी विवेकानन्द की तीसरी देन जो उन्होंने राजनीतिक विचार-धारा को प्रदान की, शक्ति और निर्भीकता का सिद्धान्त है । अंग्रेजों की दासता में रहते हुये पराधीन भारत के प्रति उनका अनन्य प्रेम था । उनकी हार्दिक इच्छा थी कि भारत विदेशी दासता से मुक्ति प्राप्त करे लेकिन वे एक सन्यासी थे और वे एक धार्मिक एवं परोपकारी संस्था - राम कृष्ण मिशन के संस्थापक थे । अतएव इसके लिये वे अन्य राजनीतिक नेताओं के समान राजनीतिक आन्दोलन खड़ा नहीं कर सकते थे । वह कहा करते थे कि मैं कोई राजनीतिक नेता नहीं हूँ मुझे तो केवल आत्मा की ही चिन्ता है । उन्होंने लोगों को इस बात के लिये भी आगाह किया था कि वे उनके भाषणों में और लेखों को कोई राजनीतिक महत्व प्रदान न करें लेकिन तिम पर भी यह सर्व विदित है कि उच्च कोटि के भारतीय नेता जैसे श्री अरविन्द घोष, लोकमान्य तिलक, लाला लाजपत राय, महात्मा गांधी, श्री सुभाष और श्री जवाहर लाल नेहरू प्रभृति स्वामी विवेकानन्द के देशभक्त पूर्ण भाषणों और लेखों से मातृभूमि को स्वतन्त्र करने के कार्यों के लिए प्रेरित हुये। यहां तक अराजकतावादियों, आतंकवादियों एवं क्रान्तिकारियों ने उनके शब्दों से स्फूर्ति ग्रहण की और वे मातृभूमि की वेदी पर सर्वस्व न्याँछावर करने को उद्धृत हुये।

विवेकानन्द की दृष्टि अपने समय में राजनीतिक दमनों से पिलती हुई जनता पर पड़ी । उन्होंने अपनी अमोघ वाणियों के माध्यम से हिन्दू





समाज के नागरिकों को परस्पर शान्ति तथा सुव्यवस्था रखने का उपदेश दिया। उन्होंने उन्हें राजनीतिक-चालों से अलग रहकर पारस्परिक समन्वय की भावना रखने, आपस में श्रद्धा तथा सहानुभूतिपूर्वक जीवन व्यतीत करने तथा भातृ-भाव का पाठ सीखने का उपदेश दिया।

इस प्रकार विवेकानन्द के समय में राजनीतिक परिस्थितियाँ बड़ी विचित्र थीं। उस समय प्रजातान्त्रिक मूल्यों, समाजवादी दृष्टिकोणों और राष्ट्रीय भावनाओं का नागरिकों में ही क्या, बालक वर्ग भी पूर्णतः अभाव था। विवेकानन्द की राजनीति तो केवल धर्म प्रधान राजनीति थी।

सामाजिक परिस्थितियाँ :

विवेकानन्द कालीन में धर्म की अधिक महत्व दिया जाता था। धर्म तथा सेवा कार्य में उनकी बचपन से ही लग्न थी। इसलिये उन्होंने सेवा का वृत्त लेकर सन्यास ले लिया। उस समय ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र - ये चारों वर्ग एक के बाद एक, संसार का शासन करते थे। इनमें से प्रत्येक ने अपनी पूर्ण प्रभुता की अवधि में कई ऐसे कार्य किये हैं, जिनमें लोगों की मलाई हुई तथा कुछ ऐसे, जिनसे जनको हानि भी पहुँची है।

राजा ही अपनी प्रजा की एकत्रित शक्तियों का केन्द्र होता था। वह शीघ्र मूल जाता था कि ये शक्तियाँ उसके पास हमलिये संगृहीत हैं कि वह उन शक्तियों को बढ़ाये तथा उन्हें सहस्र गुना अधिक बलशाली बनाकर पुनः अपनी प्रजा को लौटा दे, ताकि परिणाम यह हो कि ये शक्तियाँ सारे समाज की मलाई के लिये फैल जायें।

मानव समाज का शासन क्रमशः एक दूसरे के बाद चार जातियों द्वारा हुआ करता था और ये जातियाँ थीं -- पुरोहित, योद्धा, व्यापारी और मजदूर। विवेकानन्द चाहते थे कि समाज के सभी व्यक्तियों को धन, विद्या और ज्ञान का उपार्जन करने के लिये एक समान अवसर मिलना चाहिये। हर एक विषय में स्वतन्त्रता अर्थात् मुक्ति की और पगति ही मनुष्य के लिए उच्चतम



लगभग है । जो सामाजिक नियम इस स्वतन्त्रता के विकास के मार्ग में बाधक है, वे हानिकारक हैं और उनको नष्ट करने का उपाय शीघ्रता से करना चाहिये । जिन संस्थाओं के द्वारा मनुष्य स्वतन्त्रता के मार्ग में अग्रसर होते हैं, उन्हें प्रोत्साहित करना चाहिए ।

स्मरण रहे, राष्ट्र कोषधियों में बसता है ।

आर्थिक परिस्थितियाँ :

“ विवेकानन्द कालीन ” भारत की आर्थिक स्थिति ठीक ही सी थी । इतनी खराब भी नहीं थी । जनता प्रायः ठीक ही रहा करती थी । जिस समय स्वामी विवेकानन्द जी का अविभावि हुआ हमारा देश अंग्रेजों की दासता के बंधन में जकड़ा हुआ था और वह अत्यन्त ही दीन हीन अवस्था में पड़ा हुआ था । भारत की इस दुर्दशा में विवेकानन्द की वाणी से नवीन जागृति हुई । देश के युवकों में नवीन शक्ति व स्फूर्ति का संचार हुआ । देश में त्याग और बलिदान की भावना जागृत हुई तथा अंग्रेजी दासता से मुक्त करने के लिये आने वाले स्वाधीनता संग्रामों को शक्ति प्राप्त हुई ।

उन्होंने भारत के युवकों को राष्ट्रोत्थान के मार्ग पर आरुढ़ होने का सन्देश देते हुए कहा, “ उन्तीस करोड़ नर नारियों की मुक्ति के लिये अपना सम्पूर्ण जीवन अर्पित करने की प्रतिज्ञा करो जिनकी दशा दिन प्रतिदिन पतन की तरफ जा रही है ” ।

युवकों को अस्पृश्य, ऊँच-नीच, जाति-पाति के भेद को मिटाने के लिए कहा और उनको केवल भारतीय होने पर गर्वी रखने को कहते हुए कहा, “ मूल भारतीय, निधन तथा निराश्रित भारतीय, ब्राह्मण भारतीय, अस्पृश्य भारतीय सब मेरे बन्धु हैं - भारत की भूमि ही मेरा सबसे बड़ा स्वर्ग है और भारत का कल्याण ही मेरा कल्याण है ” ।



इस प्रकार विवेकानन्द के समय में गरिबी ही की यात्रा ज्यादा व्याप्त थी । निर्धन व्यक्ति बहुत दुर्लभ माना जाता था । इससे इसका असर भारत की आर्थिक स्थिति पर भी पड़ रहा था । इसी कारण लोग अर्थ-संकट में अपना जीवन व्यतीत किया करते थे ।

धार्मिक परिस्थितियाँ :

‘ विवेकानन्द ’ की दृष्टि में मनुष्य का आत्मिक पतन, नैतिक पतन, मानसिक पतन, बौद्धिक पतन, शारीरिक पतन एवं आर्थिक, सामाजिक और वैयक्तिक पतन केवल धार्मिक पतन के कारण ही होता है ।

विवेकानन्द कालीन भारत में धर्म - शब्द का तात्पर्य जो कुछ भी था या समझा जाता था, वह वस्तुतः हिन्दू-धर्म की ओर ही इंगित करता था । इस कारण हिन्दू धर्म को ज्यादा प्रमुखता मिली । स्वामी जी ने विदेशों में घूम-घूम कर हिन्दू धर्म की महानता को फैलाया तथा अपने देश एवं स्वयं के लिये यश कमाया । स्वामी विवेकानन्द आधुनिक वेदान्त के प्रवर्तक थे । उन्होंने पाश्चात्य देशों में वेदों तथा उपनिषदों के ज्ञान को प्रस्तुत करके हिन्दू धर्म की मानवता का वह प्रदर्शन किया कि भारत का शीश गौरव से समुन्नत हो गया ।

‘ वेदान्त धर्म प्रत्येक मानव का धर्म है ’ इस उद्घोष ने धार्मिक क्षेत्र में एक अपूर्व शान्ति उत्पन्न कर दी । भारत के इस सापूत ने अपने देशवासियों के मन में आत्म सम्मान एवं आत्म गौरव को जागृत किया तथा हिन्दू धर्म का प्रचार किया ।

विवेकानन्द ने अपने समय की धार्मिक परिस्थितियों को देखकर अपने विचारों और धार्मिक विचारों तथा धार्मिक शिक्षाओं को जनता जनार्दन तक पहुंचाने के लिये ‘ हिन्दू-धर्म ’ की भावना का सहारा लेकर इस धर्म को फैलाया । जिसमें ज्ञान, भक्ति और कर्म की सहज भावना को अधिक श्रेय दिया



जाता है ।

हिन्दू धर्म का प्रभाव :

विवेकानन्द के युग में हिन्दू धर्म को प्रमुख स्थान दिया गया था उसमें शैव, वैष्णव, शाक्त आदि अनेक सम्प्रदाय थे जिनकी अपनी-अपनी पृथक् दार्शनिक तथा धर्माचरण की पद्धतियाँ थीं । योगी, सन्यासी आदि अनेक प्रकार के साधु लोग अपने-अपने ढंग में जीवन की साधना, आचरण व नीति का उपदेश देते थे । इन सब मान्यताओं के मूल में एक रत समन्वय की धारा तो थी, परंतु उनके बाह्य-विरोध इतने उग्र थेकि उस एक रत समन्वय धारा का साक्षात्कार कर पाता था । इस प्रकार जन-जीवन में एक दिग्भ्रम की अवस्था भी थी । सामान्य स्तर के चिन्तनशील व्यक्ति को अपने मंगल का मार्ग बना लेना कठिन सा प्रतीत होता था ।

उस युग में तीन धर्म संसार में विद्यमान थे - हिन्दू धर्म, पारसी धर्म तथा यहूदी धर्म । लेकिन विवेकानन्द ने अपने समय में हिन्दू धर्म को ही महत्त्व दिया ।

उन्होंने कहा कि हिन्दू जाति ने अपना धर्म अपौरुषेय वेदों से प्राप्त किया है । उनकी धारणा है कि वेद अनादि और अनन्त है । वेद का अर्थ है भिन्न-भिन्न कालों में भिन्न-भिन्न व्यक्तियों द्वारा आविष्कृत आध्यात्मिक तत्वों का संचित कोष । विदेशों में घूम-घूम कर हिन्दू धर्म की महानता को फैलाया तथा अपने देश एवं स्वयं के लिये यश कमाया । स्वामी विवेकानन्द आधुनिक वेदान्त के प्रवर्तक थे । उनके अनुसार वह ज्ञान जिसमें कर्म की प्रधानता नहीं, थोथा ज्ञान है । उन्होंने हिन्दू धर्म को कर्म परायण बताया । वे कहते थे ' 'एक बार फिर भारतवर्ष को विश्व विजय करना होगा यह मेरे जीवन का स्वप्न है तथा मेरी कामना है कि आप सब जो मुझे सुन रहे हैं मेरे इस स्वप्न को अपना





समझो और उस समय तक विश्राम न करो जब तक यह स्वप्न पूरा न हो<sup>१</sup> ।  
महान देश भक्त :

तन्हें हृदय में दलित मानवता के प्रति अगाध महानुभूति एवं संवेदना थी । इनकी सेवा के भाव ही उनके मानस को आन्दोलित किया करते थे । वे दुखी होकर कभी-कभी सहसा कहा करते थे कि जब तक लट्ठालट्टा मानव भूखों मर रहा है और अज्ञान के गती में है वह हर एक व्यक्ति देशद्रोही है । जो तनका शोषण कर अपना जीवन यापन करता है और उनके कष्टों और दुखों की ओर ध्यान नहीं देता । उन्होंने देश के प्रति कथित देशभक्तों को चुनौती देते हुए कहा था और तनो मांग की थी कि क्या वे इस तथ्य का अनुभव करते हैं कि उनके देश में लाखों लोग एवं देवताओं और ऋषियों का सन्तानें आज भूखों मर रही हैं । उन्होंने देश के कह जाने वाले देश भक्तों से यह भी कहा कि<sup>२</sup> क्या तुम यह अनुभव नहीं करते कि अज्ञान का बादल हमारी मातृभूमि को आच्छादित किये हुये है और अभी तक उसको दूर करने के लिये कोई कदम नहीं उठाया गया है । ज्ञान की शक्ति द्वारा ही देश पर घुमड़ते हुये अज्ञान के बादल को हटाया जा सकता है ।<sup>१</sup> देशवासियों की दयनीय दशा को देखकर तनका हृदय इतना बेचैन हो उठता था कि वे दूसरों से पूछने लगते थे कि<sup>२</sup> क्या भारत की दुर्वशा तुम्हें बेचैन एवं निद्राहीन नहीं बना देती ? क्या तुम्हारा हृदय स्पन्दित नहीं होता ? क्या इनको दशा तुम्हें पागल नहीं बना देती ?<sup>२</sup>

---

१ राष्ट्रियता के पितामह ' जन्म शताब्दी स्मृति पुस्तिका' --

चिन्तामणि शुक्ल, पेज १६ .

२ राष्ट्रियता के पितामह - चिन्तामणिशुक्ल, पृष्ठ १६ .



उनका कहना था कि वे ही लोग देशभक्त हो सकते हैं जो लोगों की दयनीय दशा के विचार में हतने लीन हो जायें कि उन्हें अपनी ख्याति, स्त्रियों, बच्चों, सम्पत्ति और यहां तक अपने शरीर का ध्यान न रहे । दोनों के प्रति यही तल्लीनता देशभक्त होने का प्रथम कदम है ।

स्वामी विवेकानन्द ने भारत की दशा का अत्यन्त निकटता के साथ अध्ययन किया था । मातृभूमि की दासता एवं उसकी दुर्दशा ने उनके हृदय को मर्माहित कर दिया था । वे उसकी दयनीय दशा पर अश्रु बहाते थे । उसके उद्धार की प्रबल इच्छा ने उनको महान् देशभक्त की कोटि में स्थान दिया था । वास्तव में हमारे देश के राष्ट्रीय स्वतन्त्रता आन्दोलन के क्षेत्र में वे भारतीय जनता के अत्यन्त ही आदरणीय नेता थे ।

आधुनिक भारत के राष्ट्रीय नेताओं ने उनके प्रति एक स्वर से अपनी कृतज्ञता स्वीकार की है । जेल जीवन में योगीराज अरविन्द भी स्वामी विवेकानन्द के जीवन से प्रेरणा ग्रहण करते थे और उन्होंने अपने जीवन को उनके उपदेशों के अनुकूल ही ढाला था । पंजाब केसरी लाला गजपत राय भी स्वामी जी के राष्ट्रीय सहिष्णुता से प्रभावित हुये थे । अनेकों अवसरों पर महात्मा गांधी ने सार्वजनिक रूप से यह स्वीकार किया था कि मैं अपने बहुत कुछ विचारों के लिये स्वामी जी का ऋणी हूं । स्वामी जी के लेखों ने उन्हें बहुत कुछ भारतमाता के रूप को समझने में सभ्य बनाया । स्वामी जी ने अस्पृश्यता पर जो कठोर प्रहार किया था उससे उन्हें अस्पृश्यता को मिटाने वाले हरिजन आन्दोलन में भी बड़ी प्रेरणा मिली ।

राष्ट्रीयता के महान् प्रेरक :

भारत की राष्ट्रीयता से भयभीत होकर जब ब्रिटिश सरकार ने १९३० राष्ट्रीयता के मूल कारणों को जानने के लिये रौलट कमेटी का निर्माण किया उस समय इस कमेटी ने भी राष्ट्रीय आन्दोलन के उत्थान के कारणों में स्वामी विवेकानन्द के आत्मोत्तेजित भाषणों को भी एक कारण स्वीकार किया था



और यह लिखा था भारत की अधिकांश शिद्धिगत जनता स्वामी जी के भाषणों को पढ़कर राष्ट्रिय भावनायें उत्प्रेरित होती हैं ।

भारतीय नारियां एवं विवेकानन्द :

---

स्वामी जी भारतीय नारियों का पतनावस्था से भी बड़े द्रवीभूत हुये थे । भारत के सुधार आन्दोलन के नेताओं में जिन्होंने भारतीय नारियों की उन्नति का प्रयत्न किया, स्वामी जी सबसे आग्रिम थे । गर्व श्री ईश्वर चंद्र विद्यासागर, राजा राम मोहन राय, रानाडे, महात्मा गांधी प्रभृति ने इस क्षेत्र में विशेष उल्लेखनीय कार्य किया लेकिन स्वामी विवेकानन्द ने इस दिशा में जो चेतना उत्पन्न की वह अविस्मरणीय रहेंगे । उन्होंने भारतीय समाज में नारियों को उच्च स्थान प्रदान करने को जोरदार आवाज बुलन्द की । भारत की नारियों ने उन्हें उद्धारक के रूप में देखा । उन्होंने समाज में नारियों की गिरी हुई अवस्था और उनके सामाजिक बन्धन के विरुद्ध आंदोलन किया ।

वह नारियों का बड़ा आदर करते थे । वह प्रत्येक नारी को, चाहे वह भारतीय हो अथवा अन्य देश की, माता समझते थे । भारतीय नारियों की अशिद्धा और उनके संकुचित दृष्टिकोण ने उनके हृदय पर बड़ा आघात पहुंचाया था । यही कारण था कि जब वे पश्चात्य लोगों की सामाजिक और आर्थिक दशा की तुलना करते थे तब समय भारतीय नारियों की निराशाजनक स्थिति पर प्रकाश डालते थे ।

पश्चात्य शिष्या मगिनी निवेदिता जब कभी उनसे कुछ कार्य सुपुर्दे करने की बात उनके सम्मुख रहती थी स्वामी जी सदैव यही कहते थे कि भारत में नारी जाति के साथ सम्पर्क स्थापित करना और उनका अध्ययन करना ही उनका एक बड़ा कार्य होगा । स्वामी जी के ओठों पर भारतीय नारियों एवं पुरुषों की बात सदैव रहती थी । देशोत्थान के कार्यक्रम में वे सदैव नारियों



के कल्याण को सम्मिलित करते थे । उनका कहना था कि जिस प्रकार कोई चिढ़िया भूक पंख से हों नहीं उड़ सकती उसी प्रकार कोई भी समाज केवल पुरुषों की उन्नति पर ही आश्रित नहीं रह सकता ।

वह जानते थे कि केवल पुरुष जाति के सुधार से ही भारतीय समाज उन्नत नहीं हो सकता । उन्होंने जोरदार शब्दों में यह भाव प्रकट किये थे कि स्त्री-पुरुष दोनों को ही शिक्षा प्राप्त करनी चाहिये । उन्होंने मदैव इस बात पर बल दिया कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नारियों को दशा में सुधार होना चाहिये । वह नहीं चाहते थे कि भारतीय नारियाँ दुर्बलतावस्था में पड़ी रहें । उनका कहना था कि उनमें शारीरिक दाम्भता होनी चाहिये । बालिकाओं के प्रत्येक स्कूल और कालेज में शारीरिक प्रशिक्षण की व्यवस्था होनी जरूरी है । हमसे हमारा राष्ट्र साहसी और क्लृप्त बन सकेगा । पुरुष हो या स्त्री सब के लिये शक्ति की महान् आवश्यकता है ।

भारत की बाल विधवाओं की दशा श्री स्वामी जी बड़ी दुःखी करती थी । इसको रोकने के लिए उन्होंने देर में विवाह करने का सुझाव रखा था । आज के वैज्ञानिक युग में नारियों को किस प्रकार की शिक्षा प्रदान की जाय ? इस प्रश्न का भी उत्तर स्वामी जी ने दिया था । उन्होंने कहा था कि प्राचीन आध्यात्मिक मूल्यों के साथ-साथ भारतीय नारियों को आधुनिक विज्ञान का भी ज्ञान प्राप्त करना चाहिये । संतोष में स्वामी विवेकानन्द की सबसे बड़ी पूजनीय प्रतिमा भारत माता थी । इससे बढ़कर कोई वस्तु अधिक पवित्र नहीं थी । इसी विचार से स्पष्ट प्रकट होता है कि उनमें भारतीय नारित्व के प्रति कितने सम्मान के भाव थे । मातृशुक्ति ने ही उनको जीवन में महान् शायी करने में समर्थ बनाया था ।

दार्शनिक विचारधारा :

महान् सन्यासी, शिक्षा शास्त्री एवं देश भक्त स्वामी विवेकानन्द का जीवन दर्शन अत्यन्त ही प्रेरणादायक है । उनका कथन है कि प्रत्येक व्यक्ति को वीर, निर्भय एवं कर्मठ होना चाहिये क्योंकि डरपोक एवं उदासीन व्यक्ति जीवन





में कोई कार्य नहीं कर सकता । इसलिये मनुष्य मात्र को उन्होंने सन्देश दिया था

‘‘ तुम वीर बनो । तुम निर्भीक बनो । भय को दूर करो, भय पाप है, तक्ष्मा जीवन में कोई स्थान नहीं है ’’ ।<sup>१</sup>

स्वामी विवेकानन्द जीवन में संघर्ष को ही उत्तम समझते थे । विवेकानन्द का विचार था कि जो व्यक्ति संघर्ष करता है उसी में चैतन्य का विभाग होता है । इसके विपरीत जो संघर्ष नहीं करता है वह हमेशा ही अंधकार में रहता है । वह चैतना का प्रकाश नहीं देखता । वे समन्वयवादी थे । विरोधी तत्वों में समन्वय स्थापित करने के लिये उन्होंने आजीवन संघर्ष किया ।

स्वामी विवेकानन्द ने देश विदेश की अनेक भाषाओं तथा उनके साहित्य का अध्ययन किया था । वेद तथा गीता का उन पर विशेष प्रभाव था । इनमें से भी वेदों का योगदर्शन उन्हें विशेष रूप से मान्य था । प्रश्न उठता है कि योग क्या है ? योग आत्मज्ञान का साधन है जिसकी अनेक रूप से व्याख्या की गयी है, पर सबसे सरल व्याख्या के अनुसार योग वह साधन है जिसके चितवृत्तियों का विरोध किया न जाय । योग के सम्बन्ध में स्वामी जी ने कहा कि जिस योग का हम अध्ययन करते हैं वह केवल हमारे लिये नहीं वरन् भगवान् के लिये ही है ।

वेदों के मार्गदर्शन की भाँति विवेकानन्द भी ईश्वर, प्रकृति तथा मनुष्य को भिन्न भिन्न रूपों से देखते थे तथा प्रकृति को स्वतन्त्र तत्त्व मानते थे । संसार की रचना के सम्बन्ध में उन्हें विज्ञान का सिद्धान्त स्वीकार था ।

स्वामी विवेकानन्द इस भौतिक संसार के अस्तित्व को स्वीकार करते थे । इसलिये उन्होंने मनुष्य की भौतिक आवश्यकता की पूर्ति के लिये भी स्वीकृति दी है । योग के लिये स्वस्थ शरीर स्वस्थ मन तथा प्रसन्नचित्त की आवश्यकता होती है तथा इन मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति आवश्यक होती है ।



## निधन -

स्वामी विवेकानन्द का निधन ४ जूलाई, १९०२ ई० में ३६ वर्ष की अल्प आयु में हो गया था । विवेकानन्द ने अपने थोड़े से ही जीवन काल में देश-विदेश में ख्याति प्राप्त कर ली थी । उन्होंने सम्पूर्ण यूरोप तथा सम्पूर्ण भारत में अपने उच्च आदर्शों का प्रचार किया । इस अल्पकाल में ही भारतीयों में स्वामी विवेकानन्द के उपदेशों के परिणामस्वरूप पुन-जागरण की एक लहर प्रवाहित हो गई और धर्म को एक वैचारिक रूप प्राप्त हुआ ।



तृतीय अध्याय

शिक्षा की प्रकृति

प्रथम पाठ्य-पुस्तक के लिये तैयार की गई है।



प्राचीन भारतीय शिक्षा दो प्रकार से विकसित हुई है। पहले प्रकार की शिक्षा के अन्तर्गत 'वैदिक-शिक्षा' आती है और दूसरे प्रकार की शिक्षा के अन्तर्गत 'नैतिक-शिक्षा' को रखा जाता है। पहली प्रकार की शिक्षा का आधार ज्ञान-काण्ड है और दूसरे प्रकार की शिक्षा का 'कर्म-काण्ड' है। इन दोनों प्रकार की शिक्षाओं को क्रमशः 'परा-विद्या' और 'अपरा-विद्या' के नाम से भी अभिहित किया जाता है। विवेकानन्द के अनुसार शिक्षा की प्रकृति का अध्ययन करने के लिये हमें शिक्षा के स्वरूप एवं शिक्षा के तात्पर्य की भी विवेचना करनी पड़ेगी।

### शिक्षा का तात्पर्य :

शिक्षा-शास्त्र में शिक्षा के अर्थ का विस्तारपूर्वक विश्लेषण किया जाता है। शिक्षा शब्द का पर्याय 'एजुकेशन' शब्द लैटिन भाषा के 'एजुशेम्' शब्द से निष्कासित हुआ है। जिनका अर्थ है 'शिक्षित करना'। 'ए' का अर्थ है 'अन्दर से' तथा 'डूको' का अर्थ है 'आगे बढ़ना'। अतएव एजुकेशन अथवा शिक्षा का अर्थ है 'अन्तःशक्तियों का बाहर की तरफ विकास करना', 'ज्ञान को भीतर ठूसना नहीं'।

व्यक्ति जन्म से कुछ शक्तियाँ लेकर पैदा होता है, शिक्षा द्वारा इन शक्तियों का विकास किया जाता है। लैटिन भाषा अन्य दो शब्द 'एजुमीयर' और 'एजुकेयर' भी शिक्षा के इसी अर्थ की तरफ संकेत करते हैं। प्रथम 'एजुमीयर' का अर्थ विकसित करना या निकालना है और दूसरे 'एजुकेयर' का अर्थ है आगे बढ़ना, बाहर निकालना अथवा विकसित करना। अतः शिक्षा का अर्थ आन्तरिक शक्तियों या गुणों का सर्वोत्तीर्ण विकास करना है न कि ज्ञान को बाहर से ठूसना।

स्पष्ट है कि शिक्षा कोई ऐसी वस्तु नहीं जो बाहर से दी जा सके। शिक्षा तो एक क्रिया है। एडीसन महोदय के अनुसार, 'शिक्षा वह क्रिया है, जिसके द्वारा मनुष्य को अपने में निहित उन शक्तियों तथा गुणों का दिग्दर्शन होता है जिनका शिक्षा के बिना प्रगट होना असम्भव है'।<sup>१</sup>

---

१ शिक्षा के तात्त्विक सिद्धांत, द्वारा - एस० के० अग्रवाल, पृष्ठ ३.





स्वामी विवेकानन्द एक शिद्धा शास्त्री थे और उन्होंने इस तरफ ज्यादा ध्यान भी दिया है । लेकिन वे अन्य शिद्धा शास्त्रियों की भांति एक महान् दार्शनिक थे और एक दार्शनिक होने के नाते उन्होंने अपने दर्शन के अनुकूल शैक्षिक विचार प्रस्तुत किये हैं । उन्हीं शैक्षिक विचारों के कारण उनकी गणना महान् शिद्धा शास्त्रियों में की जाती है ।

उन्होंने तत्कालीन शिद्धा का विरोध किया और उसे निष्पेक्षात्मक तथा अभावात्मक बतलाया । उन्होंने बताया कि पाठशालाओं में दी जाने वाली शिद्धा मनुष्य बनाने वाली शिद्धा नहीं है । वह कुछ भी नहीं सिखाती । केवल जानकारियों का ढेर देती है जो आत्ममात् हुये जिना मस्तिष्क में पड़ा रहता है । वह शिद्धा जन समुदाय को जीवन-संग्राम के उपयुक्त नहीं बनाती । उनकी चारित्रिक शक्ति का विकास नहीं करती । ऐसी शिद्धा निरर्थक है । हमें तो ऐसी शिद्धा चाहिये जिससे चरित्र का गठन हो, मानसिक शक्ति बढ़े, बुद्धि का विकास हो और व्यक्ति अपने पैरों पर खड़ा हो और जो भावों और विचारों को आत्ममात् कराये । उनके कथनानुसार शिद्धा का अर्थ दूसरों के विचारों को रट लेना नहीं है वरन् शिद्धा का अर्थ मनुष्य बनाना है, उसका विकास करना है, निर्माण करना है । उनका कहना है कि हमें तो ऐसी शिद्धा की आवश्यकता है, जिससे उपयोग धन्धों की पूर्ति के लिये उपार्जन कर सके तथा आपत्ति काल के लिये मंचय कर सके । इस प्रकार वे मैदान्तिक शिद्धा का विरोध और व्यवहारिक शिद्धा का समर्थन करते थे ।

शिद्धा का स्वरूप :

स्वामी विवेकानन्द ने शिद्धा के स्वरूप को निम्नलिखित रूपों द्वारा अभिव्यक्त किया ।

आत्मानुभूति के लिये शिद्धा :

विवेकानन्द का शिद्धा दार्शनिक के रूप में मूल्यांकन करने के लिये उन की शिद्धा की प्रकृति का अवलोकन करना परमावश्यक हो जाता है । विवेकानन्द क्योंकि निगुण सम्प्रदाय के दार्शनिक की श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं । अतः उनकी



शिद्धा का स्वरूप भी निर्गुण भक्ति से गीत-प्रोत है ।

स्वामी विवेकानन्द ने वेदान्त में अपना आत्मानुभूति की सहज अभिव्यक्ति का समा-स्वादन किया है । उसमें उक्ति की सजावट, श्लंकाण तथा चगत्कार के द्वारा विदग्ध पाठकों के मनोरंजन की प्रवृत्ति के दर्शन नहीं होते हैं। वे शिद्धा शास्त्री के अहंकार को लेकर चलने वाले शिद्धा शास्त्रियों की मत्मीना करते हैं । हमलिये वे शिद्धा शास्त्री के पद के अहंभाव को बहान करने के लच्छुक नहीं हैं । विवेकानन्द अपनी बात को सूक्ष्म रूप में न कहकर उसे उसके सामने वृहत् रूप में प्रकट करते थे । इसके उनके ब्रह्म की अनुभूति की मार्मिकता और सज्जता तथा अभिव्यक्ति की अकृमिता स्पष्ट हो जाती है । विवेकानन्द अपने विचार को दृग प्रकार व्यक्त करते थे कि हर सुनने वाला व्यक्ति उसका सहज रूप में अर्थ ग्रहण कर सकता था । विवेकानन्द की शिद्धा का आनन्द कल्पना की उद्दान मात्र नहीं अपितु वह तो अन्दर ही अन्तर चिन्तन, मनन और चर्चणा का आनन्द है ।

यदि हम साहित्य की दृष्टि से विवेकानन्द की शिद्धा की प्रकृति देखते हैं या उसका मूल्यांकन करते हैं जो विवेकानन्द को भी अभिप्सित है तथा निर्गुण भक्ति की परम्परा के अनुरूप भी है तो हमें उससे निराशा नहीं, वरन् उत्साह ही होता है ।

शिद्धा में लोक मंगल की भावना :

स्वामी विवेकानन्द की शिद्धा की प्रकृति के अन्तर्गत एक और धारणा यह है जिसे हम लोक मंगल की भावना कह सकते हैं । विवेकानन्द अपने भाषणों द्वारा आत्मानुभूति की सहज अभिव्यक्ति का आनन्द तो लेते ही हैं, इसके साथ ही उनमें अपने अनुभवों को प्रस्तुत करके लोक के कल्याण की भावना भी अत्यन्त प्रबल है । यह भी उनकी शिद्धा का एक प्रेरक तत्व है । आत्मानुभूति का तो आप ही आप विचार करके भी स्वामी विवेकानन्द आनन्द लेते हैं, परन्तु लोक-कल्याण के लिये तो उसकी शब्दार्थमय बाह्य अभिव्यक्ति भी नितान्त आवश्यक है । क्योंकि







प्रयोजन है, और शेष सब कुछ इसके फलस्वरूप आप ही आ जायेगा । हमें केवल रासायनिक सामग्रियों को इकट्ठा भर कर देना है, उनका निदिष्ट आकार प्राप्त करना - रवा बंध जाना तो प्राकृतिक नियमों से ही साधित होगा ।

..... अच्छा, यदि पहाड़, मुहम्मद के पास न आये तो मुहम्मद ही पहाड़ के पास क्यों न जाय ? यदि गरीब लड़का शिदा के मन्दिर तक न आ सके, तो शिदा को ही उसके पास जाना चाहिये ।

(३) हमें ऐसी शिदा की आवश्यकता है जिसने चरित्र-निर्माण हो, मानसिक शक्ति बढ़े, बुद्धि विकसित हो और मनुष्य अपने पैरों पर खड़ा होना सीखे ।

(४) शिदा क्या वह है जिसने निरन्तर इच्छा शक्ति को क्लृप्तपूर्वक पीढ़ी दर पीढ़ी रोककर प्रायः नष्ट कर दिया है, जिसके प्रभाव से नये विचारों की तो जात ही जाने दी जाने दीजिये, पुराने विचार भी एक-एक करके लोप होते चले जा रहे हैं, क्या वह शिदा है जो मनुष्य को धीरे-धीरे यन्त्र बना रहा है ? जो स्वयंचलित यन्त्र के समान सुकर्म करता है, उसकी अपेक्षा अपनी स्वतन्त्र इच्छा शक्ति और बुद्धि के बल से अनुचित कर्म करने वाला मेरे विचार से धन्य है ।

(५) आज हमें आवश्यकता है वेदान्तयुक्त पाश्चात्य विज्ञान की, ब्रह्मचर्य के आदर्श और अर्द्धा तथा आत्म विश्वास की । ... वेदान्त का सिद्धान्त है कि मनुष्य के अन्तर में -- एक अबोध शिशु में भी -- ज्ञान का समस्त भण्डार निहित है, केवल उठाके जागृत होने की आवश्यकता है, और यही आचार्य का काम है ।.. पर इस सब का मूल है धर्म -- वही मुख्य है । धर्म तो मात के समान है, शेष सब वस्तुएं तरकारी और चटनी जैसी हैं । केवल तरकारी और चटनी खाने से अपथ्य हो जाता है और केवल मात खाने से भी ।

(६) सत्य, प्राचीन अथवा आधुनिक किसी समाज का सम्मान नहीं करता । समाज को ही सत्य का सम्मान करना पड़ेगा, अन्यथा समाज ध्वंस हो जायेगा । कोई





हानि नहीं। सत्य ही सारे प्राणियों और समाजों का मूल आधार है, अतः सत्य कभी भी समाज के अनुसार अपना गठन नहीं करेगा।

.... वही समाज सब से श्रेष्ठ है, जहाँ सर्वोच्च सत्यों को कार्य में परिणत किया जा सकता है - यही मेरा मत है। और यदि समाज इस समय उच्चतम सत्यों को स्थान देने में समर्थ नहीं है, तो उसे इस योग्य बनाओ और जितना शीघ्र तुम ऐसा कर सको, उतना ही अच्छा होगा।

(७) स्वामी जी ने कहा कि इस समय हम पशुओं की अपेक्षा कोई अधिक नीति-परायण नहीं हैं। केवल समाज के अनुशासन के भय से हम कुछ गड़बड़ नहीं करते। यदि समाज आज कह दे कि चोरों को मारने से अब दण्ड नहीं मिलेगा, तो हम इसी समय दूसरे की सम्पत्ति छूटने को छूट पड़ेगे। पुलिस ही हमें सच्चरित्र बनाती है। सामाजिक प्रतिष्ठा के लोप को आशंका ही हमें नीतिपरायण बनाती है, और वस्तुस्थिति तो यह है कि हम पशुओं से कुछ ही अधिक उन्नत हैं।

इस प्रकार समाज सुधारवादी दृष्टि-कोण के साथ-साथ स्वामी विवेकानन्द ने अपनी शिक्षा द्वारा मानव सुधार का भी उपदेश दिया।

आध्यात्मिक अनुभूति के लिये शिक्षा :

---

विवेकानन्द मूलतः मानव के आध्यात्मिक कल्याण के उपदेष्टा थे। इसी में वे व्यक्ति का वास्तविक मंगल भी देखते थे। अतः स्वामी विवेकानन्द के अनुसार शिक्षा का तात्पर्य भी आध्यात्मिक विचारधारा ही था। उनकी दृष्टि में शिक्षा में आध्यात्मिक विचारधारा का समावेश करना ही शिक्षा कहलाता था। विवेकानन्द का नीतिवादी दृष्टिकोण भी वस्तुतः आध्यात्मिक प्रेरित है इसीलिए विवेकानन्द को एक दार्शनिक कहा गया है परन्तु जिस प्रकार विवेकानन्द का लोक मंगल बुद्धि ही नहीं, हृदय की वस्तु है, उसी प्रकार उनकी आध्यात्मिकता भी हृदय

---



से ही अनुभूत और सावात्सृत है ।

विवेकानन्द की शिक्षा का मूल विषय आध्यात्मिक अनुभूति है । उस परमत्व के दर्शन, उसके प्रति प्रेम विरह और मिलन के दाणों की अनुभूति ही इसका भाव पदा है । विवेकानन्द की इस आध्यात्मिक विचारधारा में ज्ञानी, भक्त, रहस्यवादी तथा योगी सभी प्रकार के तत्वों की अनुभूतियों का सुन्दर समन्वय है । उनके इस आध्यात्मिक प्रेम तथा आध्यात्मिक सौन्दर्य-नुभूति में निर्गुण-भक्त की प्रीति, वेदान्तों के आत्म साक्षात्कार, रहस्यवादी के परमत्व के सौन्दर्य - दर्शन एवं उगमें भावात्मक विषय तथा योगी की साधना इन सभी के आनन्दोत्साह मधुर सामरस्य हैं ।

विवेकानन्द के आध्यात्मिक हृदय ने तादात्म्य स्थापित करने पर उनकी रचनायें रस से आप्लावित हृदय की लज्ज एवं प्रगार गुण सम्पन्न अभिव्यक्ति प्रतीत होने लगती है । उनके अन्तःस्थल में बहते हुये रस स्रोत तथा इन सलियों के व्याप्त उसकी सरसता का साक्षात्कार होने लगता है । यह आध्यात्मिक विचारधारा सगुण भक्तों की भावना पर आधारित प्रेमानुभूति के आनन्द से भिन्न प्रकार की है । इसमें ज्ञानी की अद्वैतानुभूति तथा रहस्यवादी के विलय की आध्यात्मिक अनुभूति का मिश्रण है । यही अनुभूति रस रूप में परिणत हुई है । इसी का लौकिक तथा व्यवहारिक स्तर पर मानवता एवं नैतिकता के रूप के अनुभव हुआ है । संसार के माया-मोह के विपरीत, अपरिग्रह, सत्य, अहिंसा, मानव-प्रेम आदि के आपात्व उपदेश से प्रतीत होने वाले स्थल भी विवेकानन्द के आध्यात्मिक जीवन की अनुभूति से सरस हैं ।

जीवात्मा मूलतः आनन्द स्वरूप है । जीवात्मा की उत्पत्ति परमबद्ध से है, वह निरन्तर उस परम-तत्त्व में ही व्यवस्थित रहती है, और अन्त में अपने जीवन भाव की मुक्ति पर भी उसी में समाहित हो जाती है । आत्मा का मूल स्वरूप आनन्द मय हो । माया की आग भी उसे स्पष्ट नहीं कर सकती है । अतः 'तलि तपति न उपरि आग' कहा गया है । जीव की दुःखानुभूति



परमाशिक नहीं है । यह केवल भ्रमजनित है, मिथ्या है । आत्मा भगणादिक विचारों से सर्वथा मुक्त है ।

सौन्दर्यानुभूति के लिये शिक्षा :

लौकिक स्तर के प्रेम अथवा रति की अनुभूति का आनन्द भी मानव की सभी इन्द्रियों, मन और बुद्धि को आप्लावित करना प्रतीत होता है । फिर आध्यात्मिक स्तर का प्रेम अथवा सौन्दर्यानुभूति तो अत्यन्त सुखद प्रतीत होती है । इसके अन्तर्गत विवेकानन्द को जैसे विरहावस्था में विभिन्न इन्द्रियों के द्वारा दाह का अनुभव होता है वैसे ही उस परम तत्त्व के सौन्दर्य दर्शन तथा उसके प्रति जागृत प्रेम की अनुभूति के परिचय और मिलन वाले स्थलों में भी इन्द्रियों मन तथा बुद्धि - सभी आप्लावित से प्रतीत होते हैं । विषय चाहे एक अंग से, एक इन्द्रिय से गृहीत हो पर उनके द्वारा प्राप्त परितृप्ति अथवा दाह का अनुभव तो मानव का सम्पूर्ण व्यक्तित्व ही करता है । जबकि विवेकानन्द के प्रेम और सौन्दर्यानुभूति का आलम्बन तो बाह्य इन्द्रिय ग्राह्य है ही नहीं, वह तो उसके अन्तः कारण आत्मा तथा उसके सम्पूर्ण अहं का विषय है । उसकी अनुभूति में तो जानो, दार्शनिक तथा रहस्यवादी विवेकानन्द का सम्पूर्ण व्यक्तित्व ही तन्मय है ।

इसलिये विवेकानन्द ने परमत्व के सौन्दर्य-दर्शन से जागृत आध्यात्मिक अनुभूति के आह्वय को विभिन्न इन्द्रियों की परितृप्ति के उल्लास के रूप में चित्रित किया है । इस आह्लाद की अनुभूति से विवेकानन्द को उग तृप्ति का अनुभव होता है जो प्रति क्षण तृष्णा को बढ़ाती है । जितनी तृप्ति विवेकानन्द के निज को मिलती है उसनी ही अधिक तृप्ति की आकांक्षा बढ़ जाती है । इस प्रकार इस तृप्ति के शाश्वत अतृप्ति का भाव, तुष्ट होते हुए भी और अधिक तृप्ति की आकांक्षा छिपी हुई है । सौन्दर्य के अपार पारावार में कभी नेत्र डूब कर 'अनूप' के दर्शन करते हैं । कभी उन्हें उन्नत सूर्यों की श्रेणी के असीम परन्तु मधुर एवं स्निग्ध तेज के दर्शन होते हैं ।



मानव प्रेम के लिए शिक्षा :

---

प्रेम सम्बन्ध को साकार रूप देने के लिए विवेकानन्द की प्रतीकों, तथा आध्यात्मिक बातों का सहारा लेना पड़ा । उनके अभाव में तो निर्गुण व निराकारी की प्रेगानुभूति अथवा अद्वितानुभूति को साहित्य के रूप में साधारण नहीं किया जा सकता था । पर ये प्रतीकों के आवरण इतने क्षीण हैं कि जीवात्मा और परमात्मा के प्रेम मिलन की अनुभूति जरा भी आवृत करके क्षुण्ठित नहीं कर पाते हैं । इन आवरणों में इन आध्यात्मिक प्रेम को साधारण होकर प्रतिबिम्बित और विकीर्ण होने का अवसर मान मिला है ।

विवेकानन्द की आध्यात्मिक अनुभूति जायता से ऊँची उच्च कोटि की आध्यात्मिक अनुभूति है । हममें लौकिकता की गंध आज भी नहीं है ।





चतुर्थे अध्याय

शिक्षा के उद्देश्य

संस्कृत भाषा में लिखा गया है। इस पुस्तक में शिक्षा के उद्देश्य और शिक्षण विधियों के विषय में विस्तृत रूप से चर्चा की गई है।



मानव का प्रत्येक कार्य उद्देश्यपूर्ण होता है । जब हम किसी उद्देश्य और लक्ष्य को लेकर कोई कार्य करते हैं तो हम उस कार्य को तब तक करते रहते हैं जब तक कि हम अपने निश्चित उद्देश्य को प्राप्त नहीं कर लेते । उद्देश्य को प्राप्ति के उपरान्त हम उस कार्य को समाप्त करके दूसरे उद्देश्य को लेकर दूसरा कार्य करते हैं । हमारी समस्त क्रियाएँ किसी न किसी उद्देश्य को लेकर ही चलती हैं परन्तु जब तक किसी उद्देश्य की पूर्ति नहीं हो जाती तब तक मानव तत्सम्बन्धी क्रिया को करता रहता है ।

विभिन्न दार्शनिकों के मतों के अनुसार शिद्धा के उद्देश्यों में विभिन्नता आती है । स्वामी विवेकानन्द भी एक दार्शनिक थे । उनके अनुसार शिद्धा के उद्देश्य निम्नलिखित हैं :

(१) आध्यात्मिक विकास का उद्देश्य :

विवेकानन्द ने आध्यात्मिक विकास पर बल दिया था । उनके अनुसार शिद्धा व्यक्ति का आध्यात्मिक विकास करने में बहुत सहयोग देती है । आध्यात्मिक विकास के अन्तर्गत व्यक्ति का ज्ञानी, भक्त, रहस्यवादी तथा योगी आदि सभी प्रकारों के व्यक्तित्वों का विकास आ जाता है । आध्यात्मिक विकास के द्वारा व्यक्ति को यह आभास हो जाता है कि यह शरीर नश्वर है, जीवात्मा-परमात्मा का ही एक स्वरूप है । उसी में मिलकर यह शरीर बनता है और अन्त में उसी में विलीन हो जाता है । वेद-उपनिषद् आदि में प्रतिपादित आत्मा परमात्मा और जगत् की एकता की अनुभूति करना उनके अनुसार व्यक्ति का आध्यात्मिक विकास है । वेदान्त में मेक्य की अनुभूति को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है । शिद्धा द्वारा व्यक्ति को यह अनुभूति कराना, उनके अनुसार शिद्धा का मुख्य लक्ष्य है । वेदान्त में मनुष्य को आध्यात्मिक प्राणी माना जाता है । उसे अपने अन्दर निहित ब्रह्मभाव को जागृत करने पर ही सच्ची शांति मिल सकती है । यह कार्य शिद्धा को पूरा करना है । इसके लिये व्यक्ति में



ईश्वर भक्ति विकसित करने के लिये वह मानव को सर्वस्व समर्पण करने की शिक्षा देते हैं ।

### (२) धार्मिक विकास का उद्देश्य :

शिक्षा व्यक्ति के धार्मिक विकास में भी सहायक होती है । समाज में अनेक धर्म प्रचलित होते रहते हैं । शिक्षा के द्वारा मनुष्य को प्रत्येक धर्म की शिक्षा प्रदान की जाती है । जिससे मनुष्य केवल किसी धर्म विशेष ने ही नहीं बरन् अन्य धर्मों में भी परिचित हो जाता है । इसी उद्देश्य की पूर्ति करते हुए विवेकानन्द ने अपनी शिक्षा के विकास में सभी धर्मों का उल्लेख न कर केवल एक ही धर्म 'सनातन हिन्दू-धर्म' का उल्लेख किया है ।

विवेकानन्द ने अपने समय की धार्मिक परिस्थितियों को देखकर अपने विचारों और धार्मिक विचारों तथा धार्मिक शिक्षाओं को जनता तक पहुँचाने के लिये 'हिन्दू-धर्म' की भावना का सहारा लेकर इन धर्म को फैलाया । जिसमें ज्ञान-भक्ति-कर्म की सहज भावना को अधिक श्रेय दिया जाता है । वेद-उपनिषद्, रामायण, महाभारत, पुराण, गीता तथा मनुस्मृति आदि धर्म-शास्त्रों के आधार पर व्यक्ति में धार्मिक संस्कार विकसित करना उनके अनुसार शिक्षा का उद्देश्य है । अपने देश की पुरातन संस्कृति और धर्म का आधार हमारे इन्हीं धर्मशास्त्रों पर निर्भर है । अतः इनके द्वारा जो धर्म व्यवस्था, व्यवहार और आचरण मानव जीवन को सन्नत करने के लिए प्रतिपादित किये गये हैं उनके समुचित पठन पाठन के अभाव में गिरते हुए राष्ट्रीय चरित्र को देखकर स्वामी जी को बड़ा दुःख होता था । अतः देश के श्रेष्ठ नागरिकों के निर्माण के लिए उन्होंने शिक्षा के उपयुक्त धार्मिक उद्देश्य का निरूपण किया है ।

### (३) नैतिक विकास का उद्देश्य :

नैतिक विकास के द्वारा ही व्यक्ति के चरित्र का निर्माण होता है । क्योंकि नैतिक विकास के अन्तर्गत सत्य, अहिंसा, ईमानदारी आदि सद्गुण आते हैं । इनके द्वारा ही व्यक्ति का नैतिक विकास सम्भव हो जाता है । स्वामी



विवेकानन्द ने अपनी शिक्षा में इन्होंने नैतिक मूल्यों को बहुत अधिक महत्व दिया । भगवान् के प्रति निरुपाधिक प्रेम एवं भक्ति का ज्ञान रखना आदि से विकसित होने वाला नैतिकता का संदेश विवेकानन्द ने दिया है । उनके अनुसार व्यक्तियों में नैतिक गुणों का विकास शिक्षा द्वारा ही सम्भव है। अतः शिक्षा को व्यक्तियों का चारित्रिक निर्माण करने के लिए वह महत्वपूर्ण मानते हैं । विवेकानन्द का व्यथा किमी वर्ग विशेष को व्यथा नहीं थी वह सम्पूर्ण मानवता को व्यथा थी उस व्यथा का उत्तर मूलतः सामाजिक ही नहीं बल्कि आध्यात्मिक एवं नैतिक था । प्रसिद्ध शिक्षा शास्त्री एवं दार्शनिक हरनट ने भी नैतिकता पर बहुत बल दिया है ।

#### (४) सामाजिक एकता का विकास :

स्वामी विवेकानन्द की शिक्षा का अत्यन्त प्रभावशाली लक्ष्य सामाजिक एकता लाने का प्रयास ही रहा है । क्योंकि विवेकानन्द की समकालीन परिस्थितियाँ कुछ इस प्रकार की थी कि समाज में विभिन्न प्रकार की विभिन्नतायें व्याप्त थी । समाज अनेक वर्गों में विभाजित हो गया था । ब्राह्मण, क्षत्रीय, वैश्य तथा शूद्र - ये चारों वर्ग प्रचलित हो गये थे । ऐसी दशा में जन साधारण का उचित मार्ग दर्शन करने में स्वामी विवेकानन्द ने बहुत बड़ी भूमिका को निभाया । उन्होंने परस्पर फैले द्वेष को दूर करने का प्रयत्न किया तथा सब को मिलकर रहने का उपदेश दिया । स्वामी विवेकानन्द को मानव एकता से अत्यन्त ही प्रेम था । इससे वह शिक्षा को सबसे बड़ा माध्यम मानते थे । परस्पर सौहाद, प्रेम, सहानुभूति, सहयोग और एकता का पाठ उन्होंने मानव समाज को पढ़ाया । वह सामाजिक एकता के लिए जीवन भर प्रयास करते रहे । उनके अनुसार वही शिक्षा श्रेष्ठ मानी जा सकती है जो मनुष्यों को एकता के सूत्र में बांधे, 'वसुधैव कुटुम्बकम्' ( अर्थात् पृथ्वी परिवार है ) वाले भारतीय आदर्श को वह शिक्षा द्वारा साकार हुआ देखा चाहते थे ।





उन्हें वर्णीगत या जन्म जाति-ऊँच-नीच की भावना से तीव्र घृणा होती थी । उनकी दृष्टि में मानव की उच्चता का आधार जन्म अथवा सम्प्रदाय नहीं वरन् नैतिकता, सदाचार एवं सामाजिक एकता है । स्वामी जी ने कहा कि कोई भी व्यक्ति जाति से छोटा या बड़ा नहीं होता है, वरन् कर्म से ही वह छोटा या बड़ा माना जाता है । अतः व्यक्ति को सदैव आत्मकर्म करने चाहिये ।

स्वामी जी ने कहा जैसे पुरोहित समस्त ज्ञान एवं विधाओं को एक साधारण केन्द्र - अर्थात् स्वयं में केन्द्रित करने में लगा रहता है, उसी तरह राजास्वयं अपने को केन्द्रीय बिन्दु बनाकर, उसी में समस्त पार्थिव शक्तियों को एकत्र सन्निहित करने के लिये यत्नशील रहता है । यह सच है कि दोनों ही समाज के लिये उपयोगी हैं । एक समय में ही सार्वजनिक मलाई के लिये दोनों की आवश्यकता होती है, परन्तु यह केवल प्रारम्भिक अवस्था में ही होता है ।

विवेकानन्द ने कहा कि समाज के सभी व्यक्तियों को धन, विद्या और ज्ञान का उपार्जन करने के लिए एक समान अवसर मिलना चाहिये । हर एक विषय में स्वतन्त्रता अर्थात् मुक्ति की ओर प्रगति ही मनुष्य के लिये उच्चतम लाभ है । उन्होंने कहा कि जो सामाजिक नियम इस स्वतन्त्रता के विकास के मार्ग में बाधक हैं, वे हानिकारक हैं और उनको नष्ट करने का उपाय शीघ्रता से करना चाहिये । जिन संस्थाओं के द्वारा मनुष्य स्वतन्त्रता के मार्ग में अग्रसर होते हैं, उन्हें पोषाहित करना चाहिये । उनका कथन है-  
 ‘‘ स्मरण रहे, राष्ट्र कोपदियों में बसता है ’’ । अतः शिक्षा का उद्देश्य ऐसे समाज का निर्माण करना है जिसमें समस्त मनुष्य एकता के सूत्र में बंधकर अपनी उन्नति के लिये प्रयत्नशील हों ।

**मानव कल्याण का उद्देश्य :**

स्वामी जी केवल दार्शनिक ही नहीं थे, वे मूलतः मानव कल्याण के



उपदेष्टा भी थे । इसलिये उन्हें व्यक्ति का हित करना अधिक अभीष्ट था । विवेकानन्द में निहित मानव कल्याण की भावना केवल बुद्धि की ही नहीं, वरन् हृदय की भी वस्तु है । वो सच्चे हृदय से मानव का कल्याण चाहते थे ।

उनकी इस भावना के दर्शन हमें उनकी शिक्षा में भी देखने को मिलते हैं । विवेकानन्द ने अपनी शिक्षा के द्वारा आत्मानुभूति की सहज अभिव्यक्ति का आनन्द तो प्राप्त किया ही इसके साथ ही उन्होंने इसमें अपने अनुभवों को प्रस्तुत करके मानव कल्याण की भी कामना की है । हित को ध्यान में रखने के कारण यह अभिव्यक्ति निरहकार सहज एवं मधुर हो गयी है ।

विवेकानन्द की सम्पूर्ण शिक्षा ज्ञान से ओत प्रोत है । शिक्षा का मानव को ज्ञान देने का उद्देश्य तो बहुत दिनों से चला आ रहा है । विवेकानन्द ने भी अपनी शिक्षा के द्वारा जन साधारण को ज्ञान प्राप्ति का मार्ग बताया है । जिस पर चल कर प्रत्येक व्यक्ति उस परमत्व ईश्वर के दर्शन कर सकता है । वह शिक्षा द्वारा ज्ञान को जन कल्याण से जोड़ना चाहते थे । जन कल्याणकारी ज्ञान की उन्होंने पुलकंठ से प्रशंसा की है । हमारे धर्मशास्त्रों में स्थान-स्थान पर ऐसे उपदेश दिये हैं जिनमें परोपकार, विश्व कल्याण, मुक्ति और परमार्थ को जीवन का परम लक्ष्य बताया गया है । इन्हीं उपदेशों से प्रेरित होकर स्वामी जी ने अपने शिक्षा दर्शन में जन कल्याण की भावना को बहुत महत्व दिया है । स्वामी जी का सम्पूर्ण जीवन उनकी इन शिक्षाओं का ज्वलंत उदाहरण है । वस्तुतः वह शिक्षा द्वारा मानव के दुःख दारिद्र्य, निर्धनता, अज्ञान तथा अभिशाप को मिटा कर उसे सच्ची सुख शान्ति चाहते थे ।

(६) सादा जीवन उच्च विचार का उद्देश्य :

स्वामी विवेकानन्द ने सदा सादा जीवन ही व्यतीत किया है, उन्हें बाहरी चमक चमक से बहुत घृणा थी । उनके अनुसार व्यक्ति के विचार एवं भावनाएं उच्च श्रेणी की होनी चाहिये तभी वह उस महान् शक्ति ईश्वर के दर्शन



कर सकता है तथा उसकी प्राप्ति भी उसे हो सकती है । जैसे विवेकानन्द का जीवन सीधा-सादा था, उसी के अनुसार उन्होंने वैसी ही सरल भाषा के माध्यम से अपनी भावनाओं को अपनी बातों में व्यक्त किया है ।

बाह्य चाकाचौंध को हटाने का प्रयास करते हुए विवेकानन्द ने कहा कि अपने मन को चमकाना चाहिये जिसमें विषयवासना रूपी ज्वाला चारों ओर लगी हुई है । इस विषय वासना रूपी ज्वाला को केवल ज्ञान के द्वारा ही बुझाया जा सकता है ।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि जिस प्रकार का सादा जीवन उच्च विचार की उक्ति को ध्यान में रखते हुए स्वामी विवेकानन्द ने अपना संपूर्ण जीवन व्यतीत किया, उसी प्रकार का सादा जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा उन्होंने अपनी वाणियों द्वारा जन-साधारण को भी प्रदान की । अतः उनके अनुसार शिष्या को ऐसे नागरिक उत्पन्न करने चाहिए जो सादा जीवन उच्च विचार की धारणा पर खरे उतरते हों ।



पंचम अध्याय

शिक्षा का पाठ्य - क्रम

सर्व शिक्षा अभियान





पाठ्य-क्रम शिक्षार्थी की योग्यता, दायता, कार्य और अपि-रुचि को बढ़ाने वाला सफल साधन है । सामाजिक प्रगति के लिये इसका सदैव आवश्यक सम्बन्ध समझा गया है । विवेकानन्द अपने समय के प्रचलित पाठ्य क्रम से अत्यन्त खिन्न थे । वह कहते थे कि जो पढ़ाया जाना चाहिए वह पढ़ाया नहीं जाता और जो नहीं पढ़ाना चाहिए वह पढ़ाया जाता है । यह बड़ी भारी विडम्बना है कि विद्वान लोग भी इस ओर सावधान नहीं हैं । लोगों का सम्पूर्ण व्यक्तित्व विकसित करने के लिये एक सर्वांगीण पाठ्यक्रम की आवश्यकता है । उसी की ओर उन्होंने अपने शिक्षा दर्शन में विचारकों का ध्यान आकर्षित किया है ।

आध्यात्मिक तथा नैतिक शिक्षा के अन्तर्गत ही समस्त पाठ्य-क्रम को सम्मिलित किया जाता है । इनका अध्ययन हम निम्न प्रकार से करेंगे :  
धार्मिक शिक्षा :  
-----

प्राचीन भारतीय शिक्षा शास्त्रियों ने शिक्षा के आध्यात्मिक और धार्मिक तत्वों पर अधिक बल दिया है । उन्हीं के आधार पर स्वामी विवेकानन्द ने एक महान् शिक्षा दर्शन की कल्पना की । उनकी धार्मिक शिक्षायें सीखने का विषय नहीं, अपितु जीवन में अपनाने का विषय है । ऐसी धार्मिक शिक्षाओं द्वारा विकसित उपासना, भक्ति, अविना, साधना आदि धार्मिक प्रवृत्तियाँ आध्यात्मिक क्षेत्र में बहुत सहायक हैं । विवेकानन्द की दृष्टि में धार्मिक कर्तव्यों, भक्ति-साधनों और मन को पवित्र करने की शिक्षायें धार्मिक शिक्षायें ही हैं, जिनके अन्तर्गत समाज-शिक्षा राजनैतिक शिक्षा, नैतिक शिक्षा, कर्मकाण्ड सम्बन्धी शिक्षा और मानवतावादी शिक्षा सभी को स्थान दिया जा सकता है ।

विवेकानन्द की धार्मिक शिक्षाओं में परा तथा अपरा दोनों विधाओं का समावेश मिलता है । जिनके सीखने से मानव की आध्यात्मिक,



बौद्धिक और शारीरिक प्रगति की प्रवृत्तियों का विकास सहज हो जाता है । उनकी धार्मिक-शिक्षाओं की अवधारणा के अन्तर्गत ईश्वर में आस्था, धार्मिक-भावना एवं भक्ति-साधना का योग सन्निहित रहता है ।

विवेकानन्द की धार्मिक शिक्षा में सगुण भक्तों की तरह नियम व्रत तथा ऊँच-नीच की भावना की शास्त्रीय व्याख्या न करके न तो उसमें उपयोगिता दूढ़ने की चेष्टा की है और न इस प्रकार अन्तर्विरोधों के मूल में विद्यमान समन्वय को दूढ़ कर उसके साथ उन अन्तर्विरोधों में सामन्जस्य स्थापित किया है । विवेकानन्द ने इन संस्कारों को जड़ से ही उखाड़ कर फेंकने का प्रयास किया है । परन्तु भक्तों ने इसको साधन रूप में स्वीकार करते हुए भी आचार - संहिता की जड़ घास से मानव को मुक्ति दी है । उनका सन्देश भी अन्त में भगवत् प्रेम और नैतिकता में ही पर्यवसित हो जाता है । अधिकारी भेद की कल्पना करते हुये आचार संहिता की जो भक्ति-परस व्याख्या सगुण भक्तों ने की है वह भारत के जन-जीवन को वास्तविक कल्याण का मार्ग दिखा सकी है । वहीं उनको निष्ठा का विषय बना सकी । वर्ग गत् संस्कारों को फुँटलाकर हटाया नहीं जा सकता । लेकिन उनका व्यापक रूप भावना के विकास में अवश्य हो सकता है ।

जिस समय विवेकानन्द का अविर्भाव हुआ, इतिहास ने उस समय उत्तरी भारत में धार्मिक स्थिति इतनी विचित्र थी कि हिन्दू-मुसलमान बौद्ध, जैन आदि धर्म प्रचलित थे ।

आज का शिक्षा जगत जो वैज्ञानिक-प्रवृत्ति पर अधिक ध्यान दे रहा है मले ही विवेकानन्द की समस्त धार्मिक शिक्षाओं को आत्मेच्छा,



लक्ष्य और अभिव्यक्ति के प्रसारण की प्रार्थनायें करें, चाहें उनको आत्म प्रेरित निर्देशन करें चाहे उनका धार्मिक - परिश्रम कहे और चाहे व्यर्थ की बकवास कहे, परन्तु उनमें ज्ञान, वैराग्य और विवेक जागृत करने की अपूर्व शक्ति है और वह शिदा दशिन के अधिक निकट की शिदा भी है । उनमें मानवतावादी, दार्शनिक-विचारावली मरी पड़ी है ।

स्वामी विवेकानन्द ने कहा `` वह नास्तिक है, जो ईश्वर में विश्वास नहीं करता । `` नया धर्म कहता है, `` नास्तिक वह है, जो स्वयं में विश्वास नहीं करता । `` पर यह विश्वास केवल इस दूढ़ `` में `` को लेकर नहीं है । इस विश्वास का अर्थ है - सब के प्रति विश्वास, क्योंकि तुम सर्व - स्वरूप हो । आत्मप्रीति का अर्थ है सब प्राणियों पर प्रीति - समस्त पशु-पक्षियों पर प्रीति, सब वस्तुओं पर प्रीति ; क्योंकि तुम सब एक हो । यह महान् विश्वास ही संसार का सुधार करेगा । अपने आप में विश्वास रखने का आदर्श ही हमारा सबसे बड़ा सहायक है । यदि इस आत्मविश्वास का और भी विस्तृत रूप से प्रचार होता और वह कार्य-रूप में परिणत हो जाता, तो मुझे विश्वास है कि हमारी बुराइयों तथा दुःखों का बहुत बड़ा भाग आज तक मिट गया होता । मानव - जाति के सम्पूर्ण इतिहास में महान् पुरुषों और स्त्रियों के जीवन में यदि सब से बड़ी प्रवर्तक शक्ति कोई थी, तो वह आत्म विश्वास की ही शक्ति थी ।

आध्यात्मिक शिदा :

स्वामी विवेकानन्द के जो दार्शनिक विचार हैं, वे धर्म और दशिन का प्राथक्करण नहीं करते । दशिन और धर्म के विषयों में उनका दृष्टिकोण आध्यात्मिक है । वास्तविकता तो यह है कि उनके मूलभूत व्यक्तित्व से



ही उनकी सारी आध्यात्मिक - शिदा प्राणान्वित हुयी है । उनकी आध्यात्मिक शिदा आत्म साक्षात्कार पर निर्भर करती है । उनमें आत्म - साक्षात्कार की प्रक्रिया उनकी धार्मिक शिदाओं की प्रक्रिया के साथ सफलीभूत होती हुयी दीख पड़ती है ।

विवेकानन्द जी की आध्यात्मिक शिदाओं का मूल स्रोत ब्रह्म-ज्ञान अथवा आत्म ज्ञान है । उनकी रहस्यवादी आध्यात्मिक अनुभूति में परब्रह्म, ईश्वर, परमतत्त्व, जीव तत्त्व और माया तत्त्व एवं जगत तत्त्व सम्बन्धी सभी दार्शनिक एवं आध्यात्मिक - शिदाएँ हृदय का साक्षात्कार करती हैं और वे त्वान्तः सुख एवं भावना के उन्नयन में सहायक भी हैं । उनकी आध्यात्मिक शिदा मनोविज्ञान की 'अन्तर्दृष्टि' विधि का अधिक आश्रय लेती है जो आधुनिक शिदा क्षेत्र में शिदा र्थियों के मन को संशोधित कर सकने वाली है । इतना ही नहीं वह हृदय-वक्ता की भी शुद्धि करती है । स्वामी जी की व्यथा किसी वर्ग विशेष की व्यथा नहीं थी, वह व्यापक मानवता की व्यथा थी । उस व्यथा का स्तर मूलतः सामाजिक ही नहीं वरन् आध्यात्मिक एवं नैतिक था ।

नैतिक शिदा :

विवेकानन्द की समस्त वाणियाँ नीति-प्रधान हैं । धर्म, अर्थ, काम और मोक्षा की प्राप्ति में उनकी नैतिक-शिदा सम्बन्धी वाणियाँ अपने आचरण में उतारने योग्य हैं । उनकी समस्त नीति परम् वाणियों में आचरण, व्यवहार, आदर्श स्वभाव एवं मानव के बाह्य और आन्तरिक हाव-भावों का चित्रण किया गया है । उनके माता-पिता, गुरु-शिष्य, राजा-प्रजा, भाई-बहन, स्त्री-पुरुष, साधु-संन्यासी, उच्च और निम्न तथा धनी एवं निर्धन सभी के प्रति नैतिक विकास चित्रित किया गया है ।





विवेकानन्द की नैतिक शिक्षा में मानव के पाखण्ड, दुष्टता, एवं पथ प्रुष्टता, नैतिक अशुभ माने गये हैं । मनुष्य को चोरी, हिंसा, क्रूरता, प्रमाद, आलस्य द्वेष, ईर्ष्या, मद मोह, अहंकार के त्यागने और शिष्टाचार तथा सत्याचरण का पालन करने की और विशेष कल दिया गया है ।

कथनी और करनी के प्रति :

-----

निर्गुण निराकार के प्रति जिस निरुपाधिक, प्रेम, सन्ध्या, भक्ति, तीर्थ आदि धर्म भावना का जो संदेश विवेकानन्द ने दिया है, वह परमार्थतः सत्य होते हुये भी केवल कतिपय ज्ञानी व्यक्तियों के लिए ही सुबोध था । जन जीवन तो `` निरालम्ब मन चकृत - थावे `` वाली स्थिति में था ।

यही कारण था कि समन्यवाद के जिस कार्य का सूत्रपात हिन्दी तथा दार्शनिक के क्षेत्र में विवेकानन्द तथा अन्य निर्गुणियों ने किया था, उसके मूल में निहित परमार्थ सत्य को स्वीकार करते हुये सगुण भक्तों ने उस कार्य को आगे बढ़ाया और जन-जीवन को एक ठोस एवं सर्व ग्राम्य समन्वय वादी जीवन पद्धति थी ।

जो लोग उपरोक्त नैतिकता के कारणों का अपने नैतिक जीवन में पालन करते हैं, उन्हीं का नैतिक विकास हो पाता है । इस प्रकार सारांश यह है कि विवेकानन्द की नैतिक शिक्षा में आदेश की उपेक्षा सुफाव अनुशासन की अपेक्षा आवाहन और पाठ्य पुस्तकों के अध्ययन की अपेक्षा, मनन करना जैसी प्रवृत्तियों को ज्यादा श्रेय दिया है ।



चरित्र गठन के लिए शिक्षा :

---

विवेकानन्द ने मनुष्य के चरित्र के ऊपर भी बहुत जोर दिया। उन्होंने कहा कि मनुष्यका चरित्र उसकी विभिन्न प्रवृत्तियों की समष्टि है, उसके मन के समस्त फुकावों का योग है। सुख और दुःख ज्यों-ज्यों उसकी आत्मा पर से होकर गुजरते हैं, वे उस पर अपनी-अपनी छाप या संस्कार छोड़ जाते हैं और इन सब विभिन्न छापों की समष्टि ही मनुष्य का चरित्र कहलाता है। प्रत्येक विचार हमारे शरीर पर, लोहे के टुकड़े पर हथौड़े की हलकी चोट के समान है और उसके द्वारा हम जो बनाना चाहते हैं, बनते चले जाते हैं।

स्वामी जी ने कहा कि मलाई और बुराई दोनों का चरित्र गठन में समान भाग रहता है और कभी कभी तो सुख की अपेक्षा दुःख ही बड़ा शिक्षक होता है। संसार के महापुरुषों के चरित्र का अध्ययन करें तो हमें यही देखने को मिलता है कि सुख की अपेक्षा दुःख ने तथा सम्पत्ति की अपेक्षा दरिद्र्य ने ही उन्हें अधिक शिक्षा दी है एवं स्तुति की अपेक्षा आघातों ने ही उनकी अन्तःस्थ ज्ञानाग्नि को अधिक प्रस्फुटित किया है। हमारा प्रत्येक कार्य, हमारा प्रत्येक अंग-संचालन, हमारा प्रत्येक विचार हमारे चित्त पर इसी प्रकार का एक संस्कार छोड़ जाता है और यद्यपि ये संस्कार ऊपरी दृष्टि से स्पष्ट न हों, तथापि ये अज्ञात रूप से अन्दर-हीअन्दर कार्य करने में विशेषा प्रबल होते हैं।

प्रत्येक मनुष्य का चरित्र इन संस्कारों की समष्टि द्वारा ही नियमित होता है। यदि शुभ संस्कारों का प्राबल्य रहे, तो मनुष्य का चरित्र अच्छा होता है और यदि अशुभ संस्कारों का, तो बुरा। यदि कोई मनुष्य निरन्तर बुरे शब्द सुनता रहें, बुरे विचार सोचता रहे, बुरे



कर्म करता रहे, तो उसका मन भी बुरे संस्कारों से पूर्ण हो जायेगा और बिना उसके जाने ही वे संस्कार उसके समस्त विचारों तथा कार्यों पर अपना प्रभाव करते रहते हैं। ये संस्कार उसमें दुष्कर्म करने की प्रबल प्रवृत्ति उत्पन्न कर देंगे। वह तो इन संस्कारों के हाथ एक यन्त्र सा हो जायेगा।

इसी प्रकार यदि कोई मनुष्य अच्छे विचार सोचे तथा अच्छे कार्य करे, तो उसके इन संस्कारों का प्रभाव भी अच्छा ही होगा तथा उसकी इच्छा न होते हुये भी वे उसे सत्कार्य करने के लिये विवश करेंगे। जब मनुष्य इतने सत्कार्य एवं सत्-चिन्तन कर चुकता है कि उसकी इच्छा न होते हुये भी उसमें सत्कार्य करने की एक अनिवार्य प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है। इस प्रकार यदि कोई मनुष्य अच्छे विचार सोचे और अच्छे कार्य करे, तो उसके इन संस्कारों का प्रभाव भी अच्छा ही होगा तथा उसकी इच्छा न होते हुए भी वे उसे सत्कार्य करने के लिए विवश करेंगे। जब मनुष्य इतने सत्कार्य एवं सत्-चिन्तन कर चुकता है कि उसकी इच्छा न होते हुए भी उसमें सत्कार्य करने की एक अनिवार्य प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है, तब फिर यदि वह दुष्कर्म करना चाहे, तो इन सब संस्कारों का समष्टि-रूप उसका मन वैसा करने से तुरन्त रोक देगा। तब वह अपने सत्संस्कारों के हाथ एक कठपुतली जैसा हो जायेगा। जब ऐसी स्थिति हो जाती है, तभी उसका मनुष्य का चरित्र गठित या प्रतिष्ठित कहलाता है।

यदि कोई व्यक्ति किसी मनुष्य के चरित्र को जांचना चाहता है, तो उसके बड़े कार्यों पर से उसकी जांच नहीं करनी चाहिये। मनुष्य के अत्यन्त साधारण कार्यों की जांच करनी चाहिये और असल में वे ही



ऐसी बातें हैं, जिनसे हमें एक महान् पुरुष के वास्तविक चरित्र का पता लग सकता है । कुछ विशेष, बड़े अवसर तो छोटे से छोटे मनुष्य को भी किसी न किसी प्रकार का बढ़प्पन दे देते हैं । परन्तु वास्तव में बड़ा तो वही है, जिसका चरित्र सदैव तथा सब अवस्थाओं में महान् रहता है ।

अतः मनुष्य को चरित्र का निर्माण करना चाहिये तथा अपने प्रकृत स्वरूप को उसी ज्योतिर्मय, उज्ज्वल, नित्य शुद्ध स्वरूप को प्रकाशित कर, तथा प्रत्येक व्यक्ति में उसी आत्मा को जगाना चाहिये ।  
व्यक्तित्व का विकास :

स्वामी जी ने कहा कि शिदा का पाठ्यक्रम ऐसा हो जिससे कि व्यक्ति के व्यक्तित्व को बढ़ावा मिले । स्वामी जी ने एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया -- एक मनुष्य तुम्हारे पास आता है, वह खूब पढ़ा लिखा है, उसकी भाषा भी सुन्दर है, वह तुमसे एक घण्टा बात भी करता है, फिर भी वह अपना असर नहीं छोड़ जाता । दूसरा मनुष्य आता है । वह कुछ शब्द बोलता है लेकिन वे भी व्याकरण शुद्ध नहीं होते, परन्तु फिर भी खूब असर कर जाता है । अतः स्पष्ट है कि मनुष्य पर जो प्रभाव पड़ता है, वह केवल शब्दों द्वारा नहीं होता है ।

स्वामी जी ने कहा कि सम्पूर्ण शिदा तथा समस्त अध्ययन का एकमेव उद्देश्य है व्यक्तित्व को गठना । परन्तु हम यह न करके केवल बहिरंग पर ही पानी चढ़ाने का सदा प्रयास किया करते हैं । जहाँ व्यक्तित्व का ही अभाव है, वहाँ सिर्फ बहिरंग पर पानी चढ़ाने का प्रयत्न करने से क्या लाभ होगा । सारी शिदा का ध्येय है कि मनुष्य का विकास । वह अन्तर्मानव - वह व्यक्तित्व, जो अपना प्रभाव सब पर छालता है, जो अपने संगियों पर जादू सा कर देता है, शक्ति का





एक महान केन्द्र है और जब यह शक्तिशाली अन्तर्मानव तैयार हो जाता है, तो वह जो चाहे कर सकता है। यह व्यक्तित्व जिस वस्तु पर अपना प्रभाव डालता है, उसी वस्तु को कार्यशील बना देता है।

स्वामी जी ने कहा कि मनुष्य को अपनी तुलना महान् धर्माचार्यों की बड़े-बड़े दाशैनिकों के साथ करनी चाहिये। इन दाशैनिकों ने बड़ी-बड़ी आश्चर्यजनक पुस्तकें लिख डाली हैं, परन्तु फिर भी शायद ही किसी के अन्तर्मानव को व्यक्तित्व को उन्होंने प्रभावित किया हो। इसके विपरीत महान् धर्माचार्यों को देखो ; उन्होंने अपने काल में सारे देश को हिला दिया था। व्यक्तित्व ही था वह, जिसने यह अन्तर पैदा किया। दाशैनिकों का वह व्यक्तित्व जो असर पैदा करता है, किञ्चिन्मात्र होता है और महान् धर्म-संस्थापकों का जीवन पर।

योगशास्त्र भी यह दावा करता है कि उसने उन नियमों को ढूढ़ निकाला है, जिनके द्वारा इस व्यक्तित्व का विकास किया जा सकता है। इन नियमों तथा उपायों की ओर ठीक-ठीक ध्यान देने से मनुष्य अपने व्यक्तित्व का विकास कर सकता है और उसे शक्तिशाली बना सकता है। बड़ी बड़ी व्यावहारिक बातों में यह एक महत्व की बात है और समस्त शिक्षा का यही रहस्य है। इसकी उपयोगिता सार्वदेशिक है। चाहे वह गृहस्थ हो, चाहे गरीब, अमीर, व्यापारी या धार्मिक - सभी के जीवन में व्यक्तित्व को शक्तिशाली बनाना ही एक महत्व की बात है।

ऐसे अनेक सूक्ष्म नियम हैं, जो सब जानते हैं, इन भौतिक नियमों से अतीत है। मतलब यह है कि भौतिक जगत्, मानसिक जगत् या आध्यात्मिक जगत् इस तरह की कोई नितान्त स्वतन्त्र सत्ताएं नहीं हैं। जो कुछ हैं, सब एक ही तत्त्व है। सूक्ष्मतम को हम आत्मा मानते हैं तथा स्थूलतम को शरीर। और जो कुछ छोटे परिणाम में इस शरीर में हैं, वही बड़े



परिणाम में विश्व में हैं । जो पिण्ड में हैं, वही ब्रह्माण्ड में हैं ।

स्त्री-शिक्षा :

स्वामी विवेकानन्द ने कहा यह सम्झना बड़ा कठिन है कि इस देश में स्त्रियों और पुरुषों के बीच इतना भेद क्यों रखा गया है, जबकि वेदान्त की यह घोषणा है कि सभी प्राणियों में यही एक आत्मा विराजमान है । स्मृतियाँ आदि सीखकर और स्त्रियों पर कड़े नियमों का बन्धन डालकर पुरुषों ने उन्हें केवल सन्तानोत्पादक यन्त्र बना रखा है । अवनति के युग में जब कि पुरोहितों ने अन्य जातियों को वेदाध्ययन के अयोग्य ठहराया, उसी समय उन्होंने स्त्रियों को भी अपने अधिकारों से वंचित कर दिया । पर वैदिक और औपनिषादिक युग में तो मैत्रेयी, गार्गी आदि पुण्यस्मृति महिलाओं ने ऋषियों का स्थान ले लिया था ।

स्त्रियों की बहुत सी कठिन समस्याएँ हैं, पर उनमें एक भी ऐसी नहीं जो उस जादू मरे शब्द ' शिक्षा ' द्वारा हल न हो सके । स्वामी जी ने कहा कि ' पुत्रियों का लालन-पालन और शिक्षा उतनी ही सावधानी तथा तत्परता से होनी चाहिये, जितनी पुत्रों को ' <sup>१</sup> । उन्होंने कहा जैसे पुत्रों का विवाह तीस वर्ष की आयु तक ब्रह्मचर्य-पालन करना चाहिये और उन्हें भी माता-पिता द्वारा शिक्षा प्राप्त होनी चाहिये । स्त्रियों को ऐसी अवस्था में रखना चाहिये कि वे अपनी समस्याओं को अपने ही तरीके से हल कर सकें । हमारी भारतीय स्त्रियाँ इस कार्य में संसार की अन्य स्त्रियों के ही समान दक्ष हैं ।



स्त्री-शिक्षा का विस्तार धर्म को केन्द्र मानकर करना चाहिए । धर्म के अतिरिक्त दूसरी शिक्षायें गौण होंगी । धार्मिक शिक्षा, चरित्र गठन, ब्रह्मचर्य पालन - इन ही की ओर ध्यान देना चाहिये । हमारी हिन्दू स्त्रियाँ सतित्व का अर्थ आसानी से समझ लेती हैं क्योंकि यह उनका आनुवंशिक गुण है । सबसे पहले, उनमें यह आदर्श अथ गूणों की अपेक्षा अधिक सुदृढ़ किया जाए, जिससे उनका चरित्र सबल बने और वे अपने जीवन की प्रत्येक अवस्था में - चाहे विवाहित या अविवाहित - पावित्र्य से रच - भर भी ढिगने की अपेक्षा बिना किसी हिचक के अपने प्राण तक देने को प्रस्तुत रहें ।

स्वामी जी ने कहा कि भारतवर्ष की स्त्रियों को सीता के पदचिन्हों का अनुसरण करके अपनी उन्नति करनी चाहिये । सीता का चरित्र अनुपम है । वह सच्ची भारतीय स्त्री की जीती-जागती प्रतिमा हैं क्योंकि पूर्ण विकसित नारित्व के समस्त भारतीय आदर्श सीता के ही चरित्र से उत्पन्न हुये हैं । यह महामहिमायुक्ती सीता स्वयं शुद्धता से भी शुद्ध, सहिष्णुता की परमोच्च आदर्श सीता आर्यावर्त के इस विस्तृत भूमि-खण्ड में सहस्रों वर्षों से आबालवृद्धवनिता की आराध्या बनी हुयी हैं । जिससे अविचलित भाव से, मुख से एक आह तक निकाले बिना ऐसा महा-दुःखमय जीवन व्यतीत किया, वह नित्यसाध्वी, सदा शुद्ध स्वभाव सीता, आदर्श पत्नी सीता, मनुष्यलोक यहाँ तक कि देवलोक की भी आदर्श-मूर्ति पुण्य चरित्र सीता चिरकाल के लिये हमारी जातीय देवी बनी रहेगी ।

इस युग की वर्तमान आवश्यकताओं का अध्ययन करने पर यह आवश्यक रूप से दिखता है कि उनमें से कुछ को वैराग्य के आदर्श की शिक्षा दी जाए जिससे वे युग-युगान्तर से अपने रक्त में संजात ब्रह्मचर्य-रूप सद्गुण की शक्ति द्वारा प्रज्वलित होकर आजीवन कुमारी व्रत का पालन करें ।



हमारी जन्मभूमि को अपनी समुन्नति के लिये अपनी कुछ सन्तानों को विशुद्धात्मा ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणी बनाने की आवश्यकता है । यदि स्त्रियों में से एक भी ब्रह्मज्ञानी हो गयी, तो उसके व्यक्तित्व के तेज से सहस्रों स्त्रियाँ स्फूर्ति प्राप्त करेंगी और सत्य के प्रति जागृत हो जायेंगी । हमारे देश और समाज का बड़ा उपकार होगा ।

सुशिक्षित और सच्चरित्रवती ब्रह्मचारिणियाँ शिक्षा-कार्य के भार को अपने ऊपर लें । ग्रामों तथा शहरों में केन्द्र खोलकर स्त्री-शिक्षा का प्रचार का प्रयत्न करें । ऐसी सच्चरित्र, निष्ठावान उपदेशिकाओं के द्वारा देश में स्त्री-शिक्षा का यथार्थ प्रचार करना चाहिये । इसके साथ ही साथ इतिहास और पुराण, गृह व्यवस्था और कला-कौशल, गृहस्थ-जीवन के कर्तव्य और चरित्र गठन के सिद्धान्तों की शिक्षा देनी चाहिए । तथा दूसरे विषयों, जैसे सीना, पिरौना, गृह कार्य-नियम, शिशु-पालन आदि भी सिखाये जाने चाहिए ।

आधुनिक युग में स्त्रियों को आत्मरक्षा के भी उपाय सीखना अत्यन्त आवश्यक हो गया है । फांसी की रानी कैसी अपूर्व थी । बस, इसी प्रकार हम भारतवर्ष के कार्यों के लिये संधिपत्रा, लीला, अहल्याबाई और मीराबाई के आदर्शों को चरितार्थ करने वाली तथा अपनी पवित्रता, निर्मयता और ईश्वर के पादस्पर्श द्वारा प्राप्त शक्ति के कारण वीरमाता बनने योग्य महान् निर्मय स्त्रियों को सामने लाएंगे । इसके साथ ही साथ हमें यह भी देखना होगा कि वे समय पर गृह की आदर्श माता बनें । जिन सद्गुणों के कारण हमारी ये माताएँ प्रसिद्ध हैं, उनकी सन्तानें इन सद्गुणों की और भी वृद्धि करेंगी । शिक्षित और धार्मिक माताओं के ही घर में महापुरुष जन्म लेते हैं ।

इसी प्रकार यदि स्त्रियाँ उन्नत हो जाएँ, तो उनके बालक अपने उदार कार्यों के द्वारा देश का नाम उज्ज्वल करेंगे । तब तो संस्कृति, ज्ञान,





ज्ञान, शक्ति और भक्ति देश में जागृत हो जाएगी ।

जन शिक्षा :

स्वामी जी ने कहा कि देश उसी अनुपात में उन्नत हुआ करता है, जिस अनुपात में वहाँ के जन समुदाय में शिक्षा और वृद्धि का प्रसार होता है । भारतवर्ष की पतनावस्था का मुख्य कारण यह रहा कि मुठ्ठी भर लोगों ने देश की सम्पूर्ण शिक्षा और बुद्धि पर सत्ताधिपत्य कर लिया । यदि हम पुनः उन्नत होना चाहते हैं, तो हम जन समूह में शिक्षा का प्रचार करके ही वैसे हो सकते हैं । निम्न वर्ग के लोगों को अपने खोये हुए व्यक्तित्व का विकास करने के लिए शिक्षा देना ही उनकी एकमात्र सेवा करना है । उनके सामने विचारों को रखना चाहिए । संसार में उनके सामने चारों ओर क्या चला है इसकी और उनकी आँखें खोल दो, तब वे अपनी मुक्ति का कार्य स्वयं करालेंगे । प्रत्येक राष्ट्र, प्रत्येक स्त्री तथा पुरुष को अपनी मुक्ति का कार्य स्वयं करना होगा । उनके सामने विचारों को रख कर उन्हें मार्ग देना होगा ।

स्वामी जी का विचार था कि हमारे शास्त्र-ग्रन्थों में आध्यात्मिकता के जो रत्न विद्यमान हैं तथा जो कुछ ही मनुष्यों के अधिकार में मठों और श्रमणों में छिपे हुये हैं, सबसे पहले उन्हें निकालना चाहिए । जिन लोगों के अधिकार में ये छिपे हुये हैं, केवल वहीं से इस ज्ञान का उद्धार करने से काम न होगा, किन्तु उससे भी दुर्भेद्य पेटिका अर्थात् जिस भाषा में ये सुरक्षित हैं, उस शताब्दियों के संस्कृत शब्दों के जाल से उन्हें निकालना होगा ।

जन साधारण को उनकी निजी भाषा में शिक्षा देनी चाहिए ।



उनके सामने विचारों को रखना चाहिए; इससे वे जानकारी प्राप्त कर लेंगे-  
पर और भी कुछ जरूरी होगा। उन्हें संस्कृति देनी चाहिए। जब तक  
हम उन्हें संस्कृति न देंगे, तब तक उनकी उन्नत दशा कोई भी स्थायी  
रूप प्राप्त नहीं कर सकती है।

इससे साथ-साथ संस्कृत शिक्षा भी चलनी चाहिए, क्योंकि  
संस्कृत शब्दों की ध्वनि मात्र से हमारी जाति को प्रतिष्ठा, बल तथा  
शक्ति प्राप्त होती है।

सदियों से ऊंची जाति वालों, राजाओं तथा विदेशियों के  
असह्य अत्याचारों ने उनकी सारी शक्तियों को नष्ट कर दिया है और अब  
शक्ति प्राप्त करने का पहला उपाय है उपनिषदों का आश्रय लेना और यह  
विश्वास करना कि 'मैं आत्मा हूँ' ; 'मुझे तलवार काट नहीं  
सकती वायु सुखा नहीं सकती ; शस्त्र छेद नहीं सकता ; अग्नि जला नहीं  
सकती ; मैं सर्व शक्तिमान हूँ ; मैं सर्वदर्शी हूँ। वेदान्त के इन सब महान्  
तत्त्वों को अब जंगलों तथा गुफाओं से बाहर आना होगा तथा न्यायालयों  
प्रार्थना मन्दिरों एवं गरीबों के फोपड़ों में प्रवेश कर अपना कार्य करना  
होगा।

स्वामी जी ने कहा कि एक बात जो भारतवर्ष में सभी बुराइयों  
की जड़ है, वह है गरीबों की अवस्था। प्रत्येक गाँव में शिक्षा का प्रचार  
करना चाहिए तथा ऊँच-नीच का भेद-भाव हटाकर शिक्षा के माध्यम से  
उसको दूर करना चाहिए।

मानवतावादी दृष्टिकोण :

विवेकानन्द जाति-पाति के भेद-भाव को मिटाकर मानव-मानव  
में परस्पर प्रेम भावना को भरना चाहते थे। उनके अनुसार ईश्वर की पूजा में



जाति-पाति का कोई भेद-भाव नहीं होता है तथा वे जाति पातिवाद के विकराल रूप को खण्डित करना ही चाहते थे ।

जनहितवादी दृष्टिकोण :

विवेकानन्द में जन-हित की भावना थी । दलित वर्ग एवं पिछड़े वर्ग के लोगों के उत्थान का उन्होंने समाज को संदेश दिया था । उन्होंने निम्न वर्ग को ऊपर उठाकर उच्च वर्ग वालों के समीप लाकर बिठाया तथा उच्च कुलीन लोगों की बुराई की ।

अस्पृश्यता-निवारण का दृष्टिकोण :

विवेकानन्द ने समाज में फैली बहुत अकूत की भयंकर बिमारी को दूर करने का परसक प्रयास किया है ।

ऊँच-नीच की भावना का निवारण :

विवेकानन्द ने अपने समय में प्रचलित ऊँच-नीच तथा भेद-भाव की खाई को पाटना चाहा था । उनके समाज के प्रति समाजवादी एवं साम्यवादी दृष्टिकोणों ने एक नई चेतना जागृत कर दी थी ।



# ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

## गुरु - शिष्य सम्बन्ध

THE UNIVERSITY OF CHICAGO PRESS





## प्रमाणनता :

“ कौटिल्य ” ने अपने अर्थ-शास्त्र में चार प्रकार की विधाओं का वर्णन किया है - जैसे आन्वीक्षाकी, त्रयी, वातरी और दण्डनीति। उनका मत यह भी है कि समस्त मानव-समुदाय का योग-क्षेत्र करने वाली, ये चारों विधायें ही होती हैं। ये उपयुक्त पात्र ( शिष्य ) पर प्रयुक्त करने पर उसे विनीत ( शिद्दात ) बना सकती है। शिद्दा की दृष्टि से इस बात को हम इस प्रकार की अभिव्यक्त कर सकते हैं कि जिसके व्यक्तित्व में बुद्धि की इतनी क्षमता हो कि वह सुद्धा, श्रवण, ग्रहण, धारण, मनन का द्वापोह तथा तत्व की बात को विज्ञान परक दृष्टि से समझ सके - उसी को विद्या शिद्दात और सम्य बना सकती है। विद्या का यह प्रमाण्य, कुशल और योग्य शिद्दाक के व्यक्तित्व एवं उसके सानिध्य के ऊपर निर्भर है। विद्या प्राप्ति का मूलधार उचित विद्या के जानने वाले प्रकाण्ड विद्वान शिद्दाक के व्यक्तित्व में ही सन्निहित होता है। महान् व्यक्तित्व वाला शिद्दाक शिद्दार्थी की प्रज्ञा को प्रसर कर देता है। विद्यार्थी की प्रसर बुद्धि के कारण उसमें नाना प्रकार की विद्या प्राप्ति की कुशलता बढ़ती है। अतः सुयोग्य शिद्दाक और लग्नशील विद्यार्थी के अविरल सानिध्य के कारण उनमें पारस्परिक आत्म-विश्वास, सहयोग-भावना, कार्य-कुशलता और परस्पर में प्रेम-पूर्वक कार्य करने की क्षमता का विकास भी जागृत हो जाता है। इस प्रकार विद्या प्राप्ति में शिद्दाक और शिष्य का अविच्छिन्न-सम्बन्ध रहता है। शिद्दार्थी को पग-पग पर अपने पथ-प्रदर्शक के निर्देशन में रह कर ही विद्या लाभ हो सकता है तथा शिद्दाक की प्रेरणा की सहायता के बिना छात्र कभी भी सुशिद्दात ग्रहण नहीं कर सकता है।

विवेकानन्द कालीन शिद्दा को हम प्रयोजनवादी शिद्दा की कोटि में रख सकते हैं, क्योंकि उस समय शिद्दा की द्विमुखी-प्रक्रिया को ही अधिक



श्रेय दिया जाता था । उस समय शिक्षा के प्रधानतः दो रूप थे । पहला था औपचारिक शिक्षा - जो एक प्रकार की विद्यालयी शिक्षा थी और दूसरी थी अनौपचारिक शिक्षा - जो धार्मिक सम्प्रदायों की शिक्षा मात्र होती थी । हममें पहली प्रकार की शिक्षा का प्रमुख स्थान था तथा दूसरे प्रकार की शिक्षा का गौण । पहली के अन्तर्गत व्यवहारिक ज्ञान की शिक्षा को ज्यादा श्रेय दिया जाता था तथा दूसरी के अन्तर्गत माध्यमिक अभिप्रेरणाओं की शिक्षा को अधिक प्रश्रय दिया जाता था । परन्तु दोनों प्रकार की शिक्षाओं में शिक्षकों का स्थान प्रमुख था तथा छात्रों का गौण ।

अतः गुरु-शिष्य सम्बन्ध की विवेचना करते समय हमें पहले गुरु का पद, गुरु की महिमा तथा गुरु के अन्य गुणों का विवेचन करना होगा । स्वामी विवेकानन्द की दृष्टि में शिक्षक के क्या कर्तव्य हैं तथा गुरु के प्रति उसकी विचारधारा का भी अध्ययन करना होगा । साथ ही शिष्य में कौन कौन से गुण होने चाहिये जिससे वह अपने गुरु के प्रति श्रद्धा-भाव उत्पन्न कर सके, उसका भी अध्ययन करना होगा ।

स्वामी जी ने कहा था शिक्षा का अर्थ है - ' गुरुगृह-वाम ' । शिक्षक अर्थात् गुरु के व्यक्तित्व-जीवन के बिना कोई शिक्षा नहीं हो सकती । शिष्य को बाल्यावस्था से ऐसे व्यक्ति ( गुरु ) के साथ रहना चाहिये, जिनका चरित्र जाज्वल्यमान अग्नि के समान हो, जिसमें उच्चतम शिक्षा का मजीव आदर्श शिष्य के सामने रहे ।

विवेकानन्द की दृष्टि में शिक्षक :

विवेकानन्द ने अपनी समस्त वाणिष्यों में ' शिक्षक ' को ' गुरु ' की संज्ञा से सम्बोधित किया है । इस बात के प्रमाण ' विवेकानन्द ' के साहित्य में देखने को मिलते हैं ।



गुरु का पद :

विवेकानन्द ने अपनी वाणियों में अपने गुरु को बड़ी श्रद्धा के साथ स्मरण किया है और उसको भगवान से भी ऊंचा स्थान प्रदान किया है । उनके श्रुत्यायी आज भी सत्संग में उनकी वाणियों को सुनने से पूर्व सत्गुरु या सत् साहिब का प्रथम उच्चारण करते हैं ।

गुरु का प्रथम नाम - स्मरण ही नहीं, परन्तु 'विवेकानन्द' ने तो भगवान तथा गुरु दोनों को एक स्थान पर साक्षात् विराजमान होने पर प्रथम गुरु को ही प्रणाम करके उनके उच्च पद को समर्पित किया है ।

गुरु की महिमा :

स्वामी विवेकानन्द जी ने अपनी वाणियों में गुरु की महिमा को वर्णित किया है । विवेकानन्द की दृष्टि में गुरु का स्थान ईश्वर से भी श्रेष्ठ है, क्योंकि गुरु ने ही शिक्षा देकर हम सभी को ईश्वर तक पहुँचने का मार्ग बताया है तथा कहा है कि यदि कभी ईश्वर अपने भक्तों से रुष्ट हो जाये तो भक्त गुरु की शरण ले लेता है, जबकि गुरु के रुष्ट हो जाने पर शिष्य को कोई भी स्थान शरण लेने के लिए शेष नहीं रह जाता है।

शरणदाता एवं सहायक :

विवेकानन्द ने गुरु को 'अयलाता' और विपत्ति में शिष्य की सहायता करने वाला भी बताया है । वे कहते हैं कि गुरु ने मुझे शिक्षा के रूप में हीरा दिया है । इसके समतुल्य देने के लिये मेरे पास कुछ भी नहीं है । मैं किम वस्तु से गुरु को मन्तृष्ट करूँ । अर्थात् गुरु दक्षिणा के रूप में गुरु को देने की उत्कृष्ट अभिलाषा एवं कुछ दे सकने की आत्म विश्वासपूर्ण अहता मेरे मन की मन में ही रह गई है ।



शिक्षा में शिक्षक का स्थान :

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार शिक्षा में अध्यापक को निदेशक, पथ प्रदर्शक तथा सहायक के रूप में कार्य करना चाहिये । वह मौन रूप में बालकों की अभिरूचियों का अध्ययन करने और उन अभिरूचियों के अनुसार बालकों के लिए शिक्षा की सामग्री का संकलन तथा प्रस्तुतिकरण करे । उसे स्वयं बालकों को ज्ञान देने का प्रयास नहीं करना चाहिये तथा न उस पर बाहरी ज्ञान को लादना चाहिये । उसे तो यह प्रयत्न करना चाहिए कि बालक अपनी अभिरूचियों के अनुसार ज्ञान का अर्जन करते हुए स्वशिक्षा के पथ पर अग्रसर हों ।

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार अध्यापक निर्देशक या स्वामी नहीं है । वह सहायक तथा पथ प्रदर्शक है । उसका कार्य है सुझाव देना न कि ज्ञान को लादना । वह वास्तव में छात्र के मस्तिष्क को प्रशिक्षित नहीं करता है । वह छात्र को केवल यह बताता है कि वह अपने ज्ञान के साधनों को किस प्रकार समृद्ध बनायें ? वह छात्र को सीखने की प्रक्रिया में सहायता तथा प्रेरणा देता है । वह छात्र को ज्ञान नहीं देता है । वह उसे बताता है कि वह अपने आप किस प्रकार ज्ञान प्राप्त करे । वह बालक के अन्दर निहित ज्ञान को बाहर नहीं निकालता है । वह उसे केवल यह बताता है कि ज्ञान कहाँ है तथा उसको बाहर आने के लिए किस प्रकार अभ्यस्त किया जा सकता है ।

शिक्षा में शिक्षार्थी का स्थान :

स्वामी विवेकानन्द ने बालक को शिक्षा में प्रमुख स्थान दिया है । उनके अनुसार प्रत्येक बालक में व्यक्तिगत विलक्षणतायें होती हैं । हम ईश्वरीय देन को पूर्ण रूपेण विकसित करना ही उसकी सच्ची शिक्षा है । उनका विश्वास था कि बालक के विशेष गुणों, योग्यताओं, विचारों तथा धर्म की किसी पूर्व निश्चित योजना के अनुसार बलपूर्वक विकसित करना उसके विकास को कुण्ठित करना है, जो उसके माथ अन्याय है । उन्होंने बताया





कि शिक्षा की व्यवस्था बालक की प्रवृत्ति को ध्यान में रखते हुए उसकी जिज्ञासा तथा रुचियों के अनुसार की जानी चाहिये जिससे उसके व्यक्तित्व का पूर्ण विकास हो जाये ।

विवेकानन्द बालक को एक ऐसे पर्यावरण में रखना चाहते थे । जिनमें उसकी ज्ञानेन्द्रियों का विकास तथा प्रशिक्षण हो और वे सत्य की खोज के लिए अग्रसर हों । विवेकानन्द के अनुसार बालक की शिक्षा उसकी प्रकृति में जो कुछ सर्वोत्तम, सर्वाधिक शक्तिशाली, सर्वाधिक अन्तरंग तथा जीवनपूर्ण है, उसको व्यक्त करना, होनी चाहिये, मनुष्य की क्रिया तथा विकास जिस साँचे में ढलने चाहिये, वह उसके अन्तरंग गुण तथा शक्ति का साँचा है । उसे नई वस्तुयें अवश्य प्राप्त होनी चाहिये, परन्तु वह उनको सर्वोत्तम रूप से तथा सबसे अधिक प्राणमय रूप में स्वयं अपने विकास, प्रकार तथा अन्तरंग शक्ति के आधार पर प्राप्त होगा ।

अतः बालक की सच्ची शिक्षा वही है जो कि सम्पूर्ण पक्षों का विकास करे ।

अनुशासन के प्रति दृष्टिकोण :

स्वामी विवेकानन्द शारीरिक तथा मानसिक दोनों प्रकार की क्रियाओं पर नियन्त्रण की बात कहते थे । उनके अनुसार शिक्षा की प्रक्रिया में अनुशासन का महत्वपूर्ण स्थान होता है । अनुशासन का सम्बन्ध वे भावना से जोड़ते थे तथा हम भावना का सम्बन्ध नैतिकता से है । उनके अनुसार प्रत्येक अध्यापक का यह उत्तरदायित्व है कि वह बालक के मन में ऐसी भावना विकसित करे कि वे अच्छाई की तरफ अग्रसर हों । उनके विचारानुसार अध्यापक को बच्चों के साथ प्रेम व सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करना चाहिये, कठोरता से वास्तविक अनुशासन की प्राप्ति नहीं हो सकती है ।



स्वामी विवेकानन्द प्रभावात्मक अनुशासन का समर्थन करते हैं । उनका कथन है कि शिक्षकों को बालकों के सम्मुख उच्च, महान् पवित्र आदर्श उपस्थित करने चाहिये ताकि वे शिक्षक के प्रभाव को स्वीकार करें तथा उनकी तरह स्वतः अनुशासित जीवन व्यतीत करें । हमके अतिरिक्त वे मुक्त्यात्मक अनुशासन का भी कुछ सीमा तक समर्थन करते हैं ।

स्वामी विवेकानन्द की दृष्टि में विद्यालय :

विद्यालय की आवश्यकता को स्पष्ट करते समय स्वामी विवेकानन्द यह आशा करते हैं कि विद्यालय बालक के भौतिक एवं आध्यात्मिक विकास में सहायक हो । भौतिक विकास हेतु विद्यालय में विभिन्न भाषाओं, साहित्य, संस्कृति, विज्ञान आदि के शिक्षण की व्यवस्था की जानी चाहिये तथा आध्यात्मिक विकास हेतु बालक को चिन्तन, मनन, अम मानव सेवा करने के अवसर मिलने चाहिये । उनके अनुसार विद्यालय भौतिक प्रगति तथा वेद साधना के केन्द्र होने चाहिये ।

स्वामी विवेकानन्द मनुष्य - मनुष्य में भेद नहीं करते थे । हम-लिये वे जाति, धर्म, अर्थ तथा रंग किसी भी आधार पर मनुष्य-मनुष्य के अन्तर को स्वीकार नहीं करते थे । उनके अनुसार विद्यालयों में सभी बच्चों को अपनी योग्यतानुसार प्रवेश के समान अवसर दिये जाने चाहिये । विद्यालयों का वातावरण विश्व बन्धुत्व की भावना से पूर्ण होना चाहिये । उनके द्वारा स्थापित विवेकानन्द आश्रम इसी प्रकार का शिक्षा केन्द्र है ।



सप्तम अध्याय

उपसंहार

॥॥॥ ॥॥॥ ॥॥॥ ॥॥॥ ॥॥॥ ॥॥॥



स्वामी विवेकानन्द का शिक्षण विचारों के रूप में :

सौ दो सौ या पांच सौ वर्षों बाद जब इस युग के महान् पुत्रों की सूची बनायी जायेगी तब जिन आधे सौ लोगों को समझ में आयेगा कि उनमें से एक स्वामी विवेकानन्द जी भी होंगे । उन्होंने अपने व्यक्तित्व की अपूर्व रूप भारतीय जीवन के अधिकतर पक्षों पर छोड़ी है । उन्होंने भारत में शैक्षणिक चिन्तन में विशेष रूप से महत्वपूर्ण योगदान दिया है ।

स्वामी विवेकानन्द ने प्रकृतिवादियों तथा प्रयोजनवादियों की तरह बाल केन्द्रित शिक्षा पर बल दिया है । उन्होंने शिक्षा को केवल निदेशक, सहायक तथा पथ-प्रदर्शक के रूप में स्वीकार किया तथा नन शिक्षण सिद्धान्तों का निर्माण किया जिसके अनुसार बालक को उसकी मातृ-भाषा के माध्यम से पूर्ण स्वतन्त्रता के वातावरण में उसकी अभिरुचियों का अध्ययन का प्रेम तथा महान्भूतिपूर्वक उसकी प्रकृति के अनुसार स्वाभाविक विकास के अवसर मिलते रहें ।

स्वामी विवेकानन्द ने अनुभव किया कि भारतीयों का दृष्टिकोण शनैः शनैः मौक्तिकवादी होता जा रहा है, जिससे उनके अन्दर की दिव्य ज्योति बुझती जा रही है । अतः उन्होंने प्रचलित मौक्तिकवादी शिक्षा की कड़ी आलोचना करते हुए बतलाया कि यह शिक्षा विदेशी है । इससे भारतीय संस्कृति एवं परम्पराओं का शोषण सम्भव नहीं है । भारत को ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है जो भारतीयों के मस्तिष्क तथा आत्मा की शक्ति का निर्माण अथवा जीवन का उत्कर्ष कर सके । इस दृष्टि से स्वामी विवेकानन्द ने एक आश्रम भी खोला, जिसमें अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय की स्थापना की तथा नये सिद्धान्तों पर आधारित करके शिक्षा को एक नया रूप देकर भारतीय जनता के सामने रखा जो बालक के स्वभावानुकूल हों तथा जो ब्रह्मचर्य द्वारा तप, तेज की वृद्धि से बालकों के मन, शरीर, हृदय तथा आत्मा को सशक्त बना सके ।





स्वामी विवेकानन्द का दर्शन उनके विकासवाद के आदर्श सिद्धांत पर टिका हुआ है। मनुष्य की प्रत्येक क्रिया का लक्ष्य उसका विकास है तथा शिक्षा का लक्ष्य मनुष्य का सर्वांगीण विकास करना है। यह लक्ष्य केवल विद्यालयों में शिक्षा से प्राप्त नहीं किया जा सकता। स्वामी विवेकानन्द के अनुसार शैक्षिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिये वेदों का ज्ञान आवश्यक है।

स्वामी विवेकानन्द के शैक्षिक आदर्श ठोस मनोवैज्ञानिक आधार पर टिके हुये हैं। उनकी शिक्षा प्रणाली में मनुष्य के प्रत्येक पहलू, शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक, नैतिक तथा धार्मिक सभी के विकास का प्रयास किया गया है वे व्यक्ति की पूर्णता को उसके सामाजिक पहलू के विकास के बिना असम्भव मानते हैं। इसलिये उनकी शिक्षा प्रणाली में सर्वांग व्यक्तित्व में व्यक्तिगत शक्तियों, मर्मथ्यों तथा गुणों के विकास के साथ-साथ सामाजिक गुणों के विकास पर भी जोर दिया है।

आज भारत में शिक्षा के क्षेत्र में विचारकों तथा शिक्षकों के सामने जब अनेक समस्याएँ भयंकर रूप में उपस्थित हैं तो इन समस्याओं के मूल कारणों को खोजने में स्वामी विवेकानन्द के शिक्षा दर्शन की सहायता ली जा सकती है। क्योंकि अन्य क्षेत्रों के समान शिक्षा के क्षेत्र में भी उन्होंने व्यापकता तथा गहराई दोनों दृष्टि से सत्यों की खोज की है। इसलिए उनका शिक्षा दर्शन केवल समकालीन शिक्षा दर्शन में ही नहीं अपितु आधुनिक शिक्षा दर्शन में भी विशिष्ट स्थान रखता है। इस प्रकार वह एक शिक्षा शास्त्री के रूप में हमारे सामने आते हैं। उनकी शिक्षा दर्शन से प्रेरणा पाकर आधुनिक युग में शिक्षा के क्षेत्र में नये सूत्रों का समावेश किया जा सकता है।



### अध्ययन के निष्कर्ष

#### प्रस्तावना :

भारत के दार्शनिकों में स्वामी विवेकानन्द एक ऐसे महापुरुष हैं जिन्होंने शिदा जगत् को बहुत प्रभावित किया है ।

स्वामी विवेकानन्द पाश्चात्य सभ्यता में पले थे तथा उन्होंने विदेशी साहित्य एवं भाषाओं का अध्ययन किया था । इसके साथ-साथ उन्होंने भारतीय संस्कृति, साहित्य, भाषाओं का अध्ययन भी किया था । अतः उनके व्यक्तित्व में पूर्वी तथा पश्चिमी सभ्यता के संगम का दर्शन होता है ।

स्वामी विवेकानन्द ने आश्रम खोले जिसमें बालकों को भौतिक एवं आध्यात्मिक जीवन के लिए एक साथ तैयार किया जाता है । अतः यहाँ पर अन्य विषयों के साथ-साथ भारतीय तथा पाश्चात्य दर्शन, सभ्यता एवं संस्कृति का अध्ययन किया जाता है । इस शिदा संस्था के द्वारा उन्होंने पूर्व एवं पश्चिम की विचारधाराओं में समन्वय स्थापित किया ।

#### शिदा का स्वरूप :

स्वामी विवेकानन्द शिदा को उसके व्यापक रूप में स्वीकार करते थे । उनके अनुसार केवल सूचनायें एकत्रित कर लेना शिदा नहीं है अपितु वह इसमें बहुत अधिक है । उन्होंने शिदा को दो रूपों में स्वीकार किया है - विषय वस्तु के रूप में तथा साधन के रूप में । वे समस्त ज्ञान को शिदा का अंग मानते थे तथा साधन के रूप में वे शिदा को मनुष्य की समस्त अन्तर्निहित शक्तियों के विकास करने वाली तथा उसकी आत्मा को विश्व की आत्मा से मिला देने वाली मानते थे ।

#### शिदा के उद्देश्य :

स्वामी विवेकानन्द मनुष्य के भौतिक तथा आध्यात्मिक दोनों प्रकार के विकास पर बल देते थे । उन्होंने शिदा के शारीरिक, मानसिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक सभी उद्देश्यों को समान रूप में स्वीकार किया है पर इन का सब का भी कुछ उद्देश्य है ।



स्वामी विवेकानन्द ने शिक्षा के निम्नलिखित उद्देश्य बताये --

- (१) बालक की शारीरिक शुद्धि करना तथा उसके शरीर का पूर्ण तथा उत्तम विकास करना ।
- (२) बालक की चित्त-सम्बन्धी क्रियाशीलता को समुन्नत करके उसके अन्तःकरण का विकास करना ।
- (३) बालक की स्नायु-शुद्धि, चित्त शुद्धि तथा मानस-शुद्धि काके उसकी इन्द्रियों के उचित प्रयोग का विकास करना ।
- (४) बालक की अभिरूचियों के अनुसार उसकी स्मृति, कल्पना, चिन्तन तथा निर्णय शक्ति का विकास करके उसका मानसिक विकास करना ।
- (५) बालक की प्रकृति, आदतों तथा भावनाओं को शुद्ध और सुन्दर बनाकर उसके हृदय का परिवर्तन करना और उसकी नैतिकता का विकास करना ।

शिक्षा का पाठ्यक्रम :

उद्देश्यों की व्यापकता के कारण पाठ्यक्रम के निर्माण में भी उनका दृष्टिकोण व्यापक था । उन्होंने मातृ-भाषा के साथ-साथ अंग्रेजी तथा अन्य भाषाओं को भी पाठ्यक्रमों में स्थान दिया है । शिक्षा का माध्यम वह मातृ भाषा को ही रखने के पक्ष में थे ।

स्वामी विवेकानन्द ने बालक का नैतिक, भौतिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक विकास करने के लिए शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर पाठ्यक्रम के विषय निर्धारित किये हैं ।

शिक्षण विधियाँ :

स्वामी विवेकानन्द शिक्षण की कृत्रिम विधि के पक्ष में थे । उन्होंने जिन शिक्षण विधियों का प्रतिपादन किया वे सभी मनोवैज्ञानिक दर्शन पर आधारित हैं ।

विवेकानन्द ने अपनी क्रमिक शिक्षण विधि को निम्नलिखित सिद्धांतों पर आधारित माना है :



- (१) करके सीखना ।
- (२) बालक का सहयोग ।
- (३) बालक की स्वतन्त्रता ।
- (४) प्रेम व सहानुभूति का प्रदर्शन ।
- (५) बालक की रुचियों का अध्ययन ।
- (६) बालक के निजी प्रयास व निजी अनुभव को प्रोत्साहन ।
- (७) विषयों की प्रकृति के अनुसार बालक की शक्तियों का प्रयोग ।

शिक्षक एवं शिक्षार्थी :

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार शिक्षा के क्षेत्र में एक अध्यापक का स्थान बच्चे के पथ-प्रदर्शक तथा सहायक के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिये । उसके अनुसार अध्यापक न तो बच्चों को ज्ञान देता है तथा न ही उनके अन्दर के ज्ञान को विकसित करता है, अपितु वह बच्चों की ह्रम बात में सहायता करता है कि वे स्वयं ज्ञान को कैसे प्राप्त करें तथा अपने अन्दर के ज्ञान को विकसित करें ।

बालक को स्वामी विवेकानन्द शिक्षा का केन्द्र मानते थे । उनके अनुसार प्रत्येक बालक कुछ सामान्य शक्तियाँ तथा कुछ विशिष्ट योग्यताएँ लेकर जन्म लेता है । बच्चों की इन शक्तियों तथा योग्यताओं में बढ़ी मिस्रता होती है । स्वामी विवेकानन्द के अनुसार बच्चों की शिक्षा का विधान इन की इन शक्तियों के आधार पर ही करना चाहिये । वे बोलते थे कि बालक के विकास में उसके पर्यावरण का बड़ा हाथ रहता है । इसलिए वे बच्चों को उच्च पर्यावरण में रखना चाहते थे ।

शिक्षा में अनुशासन :

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार अनुशासन स्थापन सम्बन्धी विचार भी अनुकरणीय है । उनके भारतीय दर्शन के अनुसार अनुशासन का सम्बन्ध नैतिकता से जोड़ा





तथा यह बतलाया कि नैतिकता ही अनुशासन का ठोस आधार बन सकती है । सचमुच अनुशासन कोई बाहरी व्यवस्था नहीं है । नैतिकता पर आधारित अनुशासन ही सच्चा अनुशासन होता है । शिक्षक तथा विद्यार्थी दोनों के लिए संयमित जीवन व्यतीत करने की आवश्यकता पर बल देकर स्वामी विवेकानन्द ने भारतीयता का परिचय दिया है ।

मावी अध्ययन हेतु सुझाव :

---

स्वामी विवेकानन्द के शिक्षा सम्बन्धी विचारों का अध्ययन और अधिक किया जा सके इसके लिए निम्न बातें ध्यान में रखी जा सकती है :

- (१) स्वामी विवेकानन्द के अतिरिक्त विश्व के अन्य महान् शिक्षा शास्त्री जिन्होंने अन्य दर्शनों का प्रतिपादन किया है उनसे स्वामी विवेकानन्द का तुलनात्मक अध्ययन किया जाये ।
- (२) स्वामी विवेकानन्द के शैक्षिक विचारों का शिक्षा पर कितना प्रभाव पड़ा उसका अध्ययन किया जाये ।
- (३) विवेकानन्द द्वारा प्रतिपादित उनकी शिक्षा पद्धति, पाठ्यक्रम, शिक्षक, शिक्षार्थी समन्वय तथा अनुशासन आदि के विषय में जाना जाये ।
- (४) स्वामी विवेकानन्द का शिक्षा के क्षेत्र में योगदान का अध्ययन किया जा सकता है ।
- (५) भारतवर्ष के आधुनिक युग के प्रसिद्ध शिक्षा दार्शनिक गांधी, रविन्द्रनाथ टैगोर आदि के साथ स्वामी विवेकानन्द के शैक्षिक विचारों का तुलनात्मक अध्ययन करने से शोध कार्य में नयी स्थापनाओं की सम्भावना हो सकती है ।



- (१) स्वामी विवेकानन्द प्रो० चिन्तामणि शुक्ल सस्ता राष्ट्र निर्माण साहित्य, कृष्णापुरी, मथुरा
- (२) स्वामी विवेकानन्द 'जाति संस्कृति तथा समाजवाद' रामकृष्ण मठ, नागपुर ।
- (३) स्वामी विवेकानन्द 'स्वाधीन भारत । जय हो ।' रामकृष्ण मठ, नागपुर ।
- (४) स्वामी विवेकानन्द 'राष्ट्र को आव्हान' रामकृष्ण मठ, नागपुर
- (५) स्वामी विवेकानन्द 'शिक्षा', रामकृष्ण मठ, नागपुर ।
- (६) स्वामी विवेकानन्द 'शिकागी वक्तृता' रामकृष्ण मठ, नागपुर ।
- (७) स्वामी विवेकानन्द 'हिन्दू धर्म के पदा में' रामकृष्ण मठ, नागपुर
- (८) एस०के० अग्रवाल शिक्षा के तात्त्विक सिद्धान्त
- (९) डा० एम० एल० शर्मा धर्म एवं संस्कृति
- (१०) सत्येन्द्र नाथ मजूमदार विवेकानन्द चरित
- (११) स्वामी विवेकानन्द व्यवहारिक जीवन में वेदान्त, रामकृष्ण मठ, नागपुर
- (१२) स्वामी विवेकानन्द जाति, संस्कृति तथा समाजवाद, रामकृष्णमठ, नागपुर
- (१३) स्वामी विवेकानन्द धर्म रहस्य, संस्कृति तथा समाजवाद, रामकृष्ण मठ, नागपुर ।
- (१४) स्वामी विवेकानन्द हमारा भारत, संस्कृति तथा समाजवाद, रामकृष्ण मठ, नागपुर ।
- (१५) स्वामी विवेकानन्द मरणोत्तर जीवन, संस्कृति तथा समाजवाद, रामकृष्ण मठ, नागपुर
- (१६) स्वामी विवेकानन्द ज्ञानयोग पर प्रवचन, राम कृष्ण मठ, नागपुर
- (१७) स्वामी विवेकानन्द भारतीय नारी, रामकृष्ण मठ, नागपुर
- (१८) स्वामी विवेकानन्द वेदान्त, राम कृष्ण मठ, नागपुर
- (१९) स्वामी विवेकानन्द वर्तमान भारत, रामकृष्ण मठ, नागपुर
- (२०) स्वामी विवेकानन्द प्राच्य तथा पाश्चात्य, रामकृष्ण मठ, नागपुर ।



# शिक्षा दार्शनिक के रूप में विवेकानन्द का मूल्यांकन

ए क दार्शनिक अध्ययन

## (लघु-शोध प्रबन्ध)

(संक्षिप्त सारांश)

[ मेरठ विश्व विद्यालय; मेरठ की एम. एड. की उपाधि हेतु ]

[प्रस्तुत लघु शोध-प्रबन्ध]

१९८५-८६

मार्गदर्शक :

**प्रो. भीष्म दत्त शर्मा**

एम. ए. (संस्कृत, हिन्दी, दर्शन-शास्त्र),

एम. एड., पी-एच. डी.

प्रवक्ता, (शिक्षा विभाग) नानक चन्द

एंग्लो संस्कृत कालिज, मेरठ।

शोधकर्ता :

**अरविन्द कुमार वर्मा**

बी. एस-सी., एम. ए. (अर्थशास्त्र),

एम. एड. (छात्र)

नानक चन्द एंग्लो संस्कृत कालिज,

मेरठ।

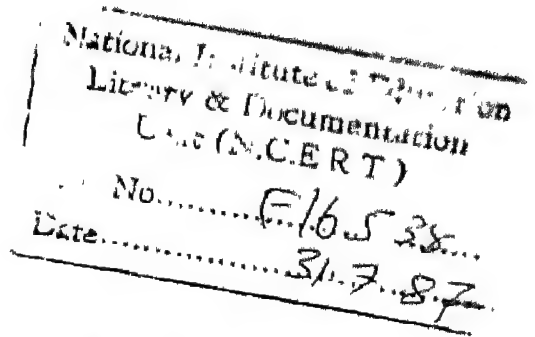
अनुक्रमांक : एक 562014



संक्षिप्त सारांश

प्रथम अध्याय

प्रस्तावना



अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्व :

अन्तर्निहित गुणों के निखार और विकास के लिए शिक्षा का मूल्य अपरिमित है। जिस प्रकार की शिक्षा होती है, शब्द भी उसी प्रकार का होता है। जिन व्यक्तियों ने राष्ट्र की शिक्षा की उन्नति के लिए अपना अमूल्य योगदान दिया है उनमें स्वामी विवेकानन्द का नाम महत्वपूर्ण है।

स्वामी विवेकानन्द केवल एक मात्र दार्शनिक के रूप में ही प्रसिद्ध नहीं है बल्कि एक महान् शिक्षा शास्त्री के रूप में भी विश्व में विख्यात है।

इनके शिक्षा दर्शन के अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्व का निरूपण निम्नलिखित रूप में किया जा सकता है।

(१) राष्ट्रीय महत्व :

देश के लोगों में राष्ट्र के प्रति प्रेम की भावना जागृत करने के लिए स्वामी विवेकानन्द ने शिक्षा में देश की सभ्यता, भाषा एवं संस्कृति के अध्ययन पर बल दिया।

(२) अन्तर्राष्ट्रीय महत्व :

स्वामी विवेकानन्द ने शिक्षा में अपने देश की भाषा, संस्कृति एवं सभ्यता के साथ-साथ अन्य देशों की भाषा एवं संस्कृति के अध्ययन पर बल दिया। उनका यह विश्वास था कि इस प्रकार की शिक्षा से विभिन्न राष्ट्रों के बीच सद्भावना एवं प्रेम की वृद्धि होगी।





## (३) धार्मिक महत्त्व :

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार विद्यालय बालक के सम्मुख ऐसा आदर्श उपस्थित करे कि वह ईश्वर प्राप्ति, मानव कल्याण तथा देश के कल्याण को अपना आदर्श माने तथा अपनी आत्मा के विकास के लिए प्रयास करें ।

## (४) नैतिक महत्त्व :

स्वामी विवेकानन्द ने नैतिक विकास के लिए बालकों में उत्तम शारीरिक, मानसिक एवं पावात्मक आदतों का निर्माण किया है तथा उनके प्राकृतिक संवेगों का उचित दिशा में मार्गन्तीकरण किया जाये ।

प्रस्तावित शोध प्रबन्ध के उद्देश्य :

प्रत्येक शोध प्रबन्ध के लिए कुछ न कुछ उद्देश्य होते हैं । इस शोध प्रबन्ध के उद्देश्य निम्न हैं :

- (१) स्वामी विवेकानन्द द्वारा प्रस्तावित जीवन उद्देश्यों की दृष्टि से शिक्षा का स्वरूप प्रस्तुत करना ।
- (२) स्वामी विवेकानन्द द्वारा प्रस्तावित जीवन उद्देश्यों की दृष्टि से शिक्षा के उद्देश्यों पर विचार करना ।
- (३) उनके दार्शनिक, धार्मिक, आध्यात्मिक एवं शैक्षिक विचारों की पृष्ठभूमि में पाठ्यक्रम पर विचार करना ।
- (४) स्वामी विवेकानन्द द्वारा अपने ग्रन्थों में प्रतिपादित शिक्षा तथा शिक्षार्थी के स्वरूप की रूप रेखा प्रस्तुत करना ।
- (५) प्रचलित शिक्षा के सन्दर्भ में स्वामी विवेकानन्द के शैक्षिक विचारों का मूल्यांकन करना ।

अध्ययन की शोध विधि :

स्वामी विवेकानन्द द्वारा लिखे गये ग्रन्थों के आधार पर उनकी शैक्षिक विचारधारा का पता लगाने हेतु ऐतिहासिक अनुसंधान विधि को अपनाया गया है ।



## द्वितीय अध्याय

स्वामी विवेकानन्द का संक्षिप्त जीवन परिचय एवं दार्शनिक विचारधारा :

स्वामी विवेकानन्द का जन्म तत्कालीन भारत की राजधानी कलकत्ता में १२ जनवरी, १८६३ को एक दार्द्रिय परिवार में हुआ था । इनके पिता का नाम श्री विश्वनाथ दत्त तथा माता का नाम श्रीमती भुवनेश्वरी देवी था । स्वामी विवेकानन्द को भारतीय संस्कृति एवं भारतीय दर्शन से अत्यधिक प्रेम था । बाल्यकाल से ही बालक नरेन्द्र को धार्मिक विषयों में बड़ी रुचि थी । अपने दार्शनिक विचारों को मूर्ती रूप देने के लिए उन्होंने आध्यात्मिक केन्द्र की स्थापना की जो आज राम कृष्ण परम हंस के नाम से प्रसिद्ध है । ४ जौलाई १९०२ ई० में ३९ वर्ष की अल्प आयु में ही इस सिद्ध पुरुष ने इस संसार को त्याग कर दिव्य लोक को प्रस्थान किया ।

दार्शनिक विचारधारा :

स्वामी विवेकानन्द ने देश-विदेश की अनेक भाषाओं तथा उन के साहित्य का अध्ययन किया । वेद से उनको बहुत ही लगाव था । स्वामी विवेकानन्द को वैदिक दर्शन विशेष रूप से मान्य थे । इसके अलावा स्वामी जी योग दर्शन पर भी बहुत जोर देते थे । स्वामी विवेकानन्द के अनुसार योग वह साधन है जिससे चित्त-वृत्तियों का विरोध किया जा सके ।

स्वामी विवेकानन्द इस भौतिक संसार के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं । इसलिए उन्होंने मनुष्य की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भी स्वीकृति दी है ।



## तृतीय अध्याय

### शिक्षा का स्वरूप

शिक्षा एक प्रकार की प्रक्रिया है जिसके द्वारा छात्रों के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास होता है। शिक्षा का अर्थ दो प्रकार से लिया जाता है

(१) संकुचित अर्थ

(२) व्यापक अर्थ

(१) संकुचित अर्थ में शिक्षा एक निश्चित स्थान स्कूल कालिज या विश्व-विद्यालय में सम्पन्न होने वाली क्रिया है।

(२) व्यापक अर्थ में प्रत्येक शिक्षक व शिक्षार्थी दोनों होते हैं तथा एक दूसरे को प्रभावित करते हैं।

### शिक्षा की परिभाषा :

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार `` शिक्षा से मेरा अभिप्राय: यह है कि बालक तथा मानव में पूर्ण रूप से शारीरिक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक बल की सर्वांगीण उन्नति हो ``।

शिक्षा के प्रति स्वामी विवेकानन्द के विचार :

स्वामी विवेकानन्द ने शिक्षा को अति व्यापक तथा गतिशील रूप दिया है। इन्होंने इसकी व्याख्या प्राचीन भारतीय परम्पराओं के आधार पर की है। स्वामी विवेकानन्द का कहना है कि `` शिक्षा मानव के मस्तिष्क तथा आत्मा की शक्तियों का निर्माण करती है। यह ज्ञान, चरित्र और संस्कृति का उत्कर्ष करती है ``।

शिक्षा का अर्थ बालक के मन में विभिन्न प्रकार की जानकारी भरना मात्र नहीं है, बल्कि उसे ज्ञान, चरित्र और संस्कृति का प्रयोग करने हेतु प्रेरित करना तथा उसके मस्तिष्क और आत्मा का विकास करना है।



चतुर्थ अध्याय  
शिक्षा के उद्देश्य

शिक्षा के उद्देश्यों का निर्धारण मानव जीवन से होता है जिस प्रकार का जीवन व्यतीत किया जाता है । शिक्षा के उद्देश्य भी उसी प्रकार के होते हैं । किसी भी देश के आदर्श एवं उद्देश्य महापुरुषों तथा विद्वानों द्वारा बनाये गये सिद्धान्तों पर आधारित होते हैं ।

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य :

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य निम्नलिखित हैं :

- (१) आध्यात्मिक विकास का उद्देश्य ।
- (२) धार्मिक तथा नैतिक विकास का उद्देश्य ।
- (३) सामाजिक एकता का विकास का उद्देश्य ।
- (४) मानव कल्याण का उद्देश्य ।
- (५) सरल जीवन यापन का उद्देश्य ।
- (६) सादा जीवन उच्च विचार का उद्देश्य ।

१- आध्यात्मिक विकास :

स्वामी विवेकानन्द ने आध्यात्मिक विकास पर अत्यधिक बल दिया है । उनके अनुसार शिक्षा व्यक्ति का आध्यात्मिक विकास करने में बहुत सहयोग देती हैं । आध्यात्मिक विकास के अन्तर्गत व्यक्ति के ज्ञानी, भक्त, रहस्यवादी तथा योगी आदि सभी प्रकार के व्यक्तियों का विकास आ जाता है ।

२- धार्मिक तथा नैतिक विकास :

शिक्षा व्यक्ति के धार्मिक विकास में भी सहायक होती है । समाज में अनेक धर्म होते हैं । शिक्षा के द्वारा मनुष्य को प्रत्येक धर्म की शिक्षा प्रदान की जाती है । जिससे मनुष्य केवल किसी धर्म विशेष से ही नहीं, वरन् अन्य धर्मों से भी परिचित हो जाता है ।





स्वामी विवेकानन्द ने कहा कि नैतिक विकास के द्वारा ही व्यक्ति के चरित्र का निर्माण होता है । क्योंकि नैतिक विकास के अन्तर्गत सत्य, अहिंसा, ईमानदारी आदि आते हैं । इनके द्वारा ही व्यक्ति का नैतिक विकास सम्भव हो सकता है । स्वामी विवेकानन्द ने अपनी शिक्षा में इन्हीं नैतिक मूल्यों को बहुत महत्त्व दिया है ।

### ३- सामाजिक एकता का विकास :

स्वामी विवेकानन्द की शिक्षा का अत्यन्त प्रभावशाली उद्देश्य सामाजिक एकता लाने का प्रयास भी रहा है । स्वामी जी ने इस दशा में सुधार कर उचित भूमिका को निभाया । स्वामी विवेकानन्द मानव एकता के अत्यन्त प्रेमी थे ।

### ४- मानव कल्याण का उद्देश्य :

स्वामी विवेकानन्द शिक्षा शास्त्री तथा दार्शनिक ही नहीं थे वरन् वे मूलतः मानव कल्याण के उपदेष्टा थे । इसलिए उन्हें व्यक्तिगत का वास्तविक हित प्रतीत होता था । स्वामी जी में नीहित मानव कल्याण की भावना केवल बुद्धि की ही नहीं, वरन् हृदय की भी वस्तु है ।

### ५- सरल जीवन यापन का उद्देश्य :

स्वामी विवेकानन्द ने सदा सरल जीवन व्यतीत किया । स्वामी विवेकानन्द के अनुसार व्यक्ति का उद्देश्य सरल जीवन यापन करने का होना चाहिए । उन्होंने इस बात पर बहुत जोर दिया ।

### ६- सादा जीवन उच्च विचार का उद्देश्य :

स्वामी विवेकानन्द ने सदा सादा जीवन ही व्यतीत किया है । उनके अनुसार व्यक्ति के विचार एवं भावनाएं उच्च श्रेणी की होनी चाहिए तभी वह अनन्य शक्ति ईश्वर के दर्शन कर सकता है तथा प्राप्ति भी सम्भव हो सकती है ।



पंचम अध्याय

शिक्षा का पाठ्यक्रम

उद्देश्यों की व्यापकता के कारण पाठ्यक्रम के निर्माण में भी स्वामी विवेकानन्द का दृष्टिकोण व्यापक था । उन्होंने मातृभाषा के साथ-साथ अन्य भाषाओं को भी पाठ्यक्रम में स्थान दिया है । स्वामी जी शिक्षा का माध्यम मातृभाषा को ही रखने के पक्ष में थे ।

स्वामी विवेकानन्द ने बालक के निर्माण में निम्नलिखित उद्देश्यों को बताया :

- (१) धार्मिक शिक्षा ।
- (२) आध्यात्मिक शिक्षा ।
- (३) नैतिक शिक्षा ।
- (४) व्यक्तित्व का विकास ।
- (५) समाज सुधारक दृष्टिकोण ।
- (६) स्त्री शिक्षा ।
- (७) व्यक्तित्व का समग्र विकास ।

इस प्रकार इन सब उद्देश्यों के विकास के लिए शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर पाठ्यक्रम का उन्होंने निर्धारण किया ।



### षष्ठ अध्याय

#### (१) शिक्षक तथा शिक्षार्थी :

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार शिक्षा के क्षेत्र में एक अध्यापक का स्थान बच्चे के पदा-प्रदर्शक तथा सहायक के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए। उसके अनुसार अध्यापक न तो बच्चों को ज्ञान देता है तथा न ही उसके अन्दर के ज्ञान को विकसित करता है अपितु वह बच्चों की इस बात में सहायता करता है कि वे स्वयं ज्ञान को कैसे प्राप्त करें तथा अपने अन्दर ज्ञान का विकास करें।

बालक को स्वामी विवेकानन्द शिक्षा का केन्द्र मानते थे। उनके अनुसार प्रत्येक बालक में कुछ विशिष्ट क्षमतायें एवं योग्यतायें होती हैं। अतः शिक्षा का निर्धारण इन शक्तियों के आधार पर ही करना चाहिए।

#### (२) शिक्षा में शिक्षक का स्थान :

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार शिक्षा में अध्यापक को निर्देशक पथ-प्रदर्शक तथा सहायक के रूप में कार्य करना चाहिए।

#### (३) शिक्षा में शिक्षार्थी का स्थान :

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार किसी पूर्व योजना के अनुसार बालक को शिक्षा देना उसके विकास को कुंठित करता है। अतः शिक्षा की व्यवस्था बालक की प्रकृति को ध्यान में रखते हुये उसकी जिज्ञासा तथा रुचियों के अनुसार दी जानी चाहिए जिससे बालक के व्यक्तित्व का पूर्ण विकास हो जाये।

#### (४) स्वामी विवेकानन्द का अनुशासन के प्रति दृष्टिकोण :

स्वामी विवेकानन्द ने अनुशासन का सम्बन्ध नैतिकता से जोड़ा है तथा बताया है कि नैतिकता ही अनुशासन का ठोस आधार बन सकती है। उनके अनुसार प्रत्येक अध्यापक का यह उत्तरदायित्व है कि वह बालक को मन में ऐसी भावना विकसित करे कि वे अच्छाई की तरफ अग्रसर हों।



## सप्तम अध्याय

### उपसंहार

स्वामी विवेकानन्द एक शिदा शास्त्री के रूप में :

स्वामी विवेकानन्द ने भारत में शैक्षणिक चिन्तन में विशेष रूप से महत्वपूर्ण योगदान दिया है ।

स्वामी विवेकानन्द ने अनुभव किया कि भारतीयों का दृष्टिकोण, शनैः शनैः मौलिकवादी होता जा रहा है जिससे उनके अन्दर की दिव्य ज्योति बुझती जा रही है । अतः इन्होंने नये सिद्धान्तों पर आधारित करके शिदा को एक नया रूप देकर भारतीय जनता के सामने रखा ।

अध्ययन के निष्कर्ष :

उपर्युक्त विवेचन द्वारा स्पष्ट होता है कि हमने स्वामी विवेकानन्द के शैक्षिक विचारों का मूल्यांकन किया है । इसके अन्तर्गत अध्ययन का महत्व, आवश्यकता एवं अध्ययन के उद्देश्यों पर प्रकाश डाला गया है । स्वामी विवेकानन्द के अनुसार शिदा के उद्देश्य, शिदा का स्वरूप, पाठ्यक्रम, शिदा विधि तथा गुरु-शिष्य सम्बन्धों का विवेचन किया है ।

मावी शोध कार्य हेतु सुझाव :

- (१) स्वामी विवेकानन्द का विश्व के अन्य महान् शिदा शास्त्रियों के साथ तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है ।
- (२) स्वामी विवेकानन्द द्वारा प्रतिपादित शिदा व्यवस्था तथा विषय वस्तु आदि का अध्ययन किया जा सकता है ।